अध्याय 4

कृष्णा सोबती और इंदिरा गोस्वामी: स्त्री का संघर्ष और स्त्री अस्तित्व की स्वतंत्र पहचान

4.1- धार्मिक कुरीतियों तथा रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध

4.2- दैहिक शोषण का प्रतिकार

4.3- स्वाभिमानी, संघर्षशील तथा मानवतावादी स्त्रियाँ

4.4- पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की यौनिक अभिव्ययक्ति

4.5- आत्मबोध से जागृत विवेकशील स्त्रियाँ

4.6 - स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान

कृष्णा सोबती और इंदिरा गोस्वामी: स्त्री का संघर्ष और स्त्री अस्तित्व की स्वतंत्र पहचान

4.1- धार्मिक कुरीतियों तथा रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध

समाज में स्त्रियों की दोयम स्थिति के पोषक, स्त्री समाज को खोखली होती रूढ़िवादी परंपराओं में बंधा और जकड़ा देखना चाहते हैं। समाज की संस्कृति, परंपरा और मान्यताओं को निभाने का दायित्व तथाकथित आधी दुनिया के कंधों पर टिका हुआ है। परंतु आज की सचेतन स्त्री, परंपराओं के इस पाश के मन्तव्य से भलीभांति परिचित है। प्रभा खेतान का कहना है, "जिन परंपराओं और मूल्यों को कभी बेहद पवित्र माना गया था, प्रतीक के रूप में जिनकी पूजा की गई थी, स्त्री वर्ग द्वारा उसी को पाखंड और ढोंग कहकर आज चुनौती दी जा रही है। इन स्त्री विरोधी सांस्कृतिक प्रतिमाओं और स्थापित मूल्यों को बचाए रखने के पीछे पुरुष वर्ग का आत्मसम्मोहन अधिक है, स्त्री का लाभ कम। "[1]

जागरूक और चैतन्य साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाओं द्वारा धर्म, समाज और संस्कृति की रूढ़िवादी परंपराओं की बेड़ियों को काटने का पक्ष लिया है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों की नायिकाएं स्त्रियों के लिए निर्धारित आचार-व्यवहार के परंपरागत मापदंडों को तोड़ती नजर आती हैं। कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' को सतही दृष्टि से देखने पर मित्रो मात्र देह के स्तर पर जीवन जीती प्रतीत होती है परंतु गंभीर दृष्टि से विश्लेषण करने पर संयुक्त परिवार में अपने अस्तित्व की पहचान के लिए मित्रो का संघर्ष नजर आता है। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में "मित्रो के माध्यम से कृष्णा सोबती ने अपनी नारी को दो विलक्षण विशिष्टताएं दी हैं- परंपरागत रूढ़ नैतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह और सनातन मानवीय मूल्यों के प्रति अगाध आस्था। "[2]

मित्रो घर में स्त्रियों पर लादे गए आचार-विचार के बंधनों और पर्दा प्रथा की समर्थक नहीं है। उपन्यास की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण के लिए द्रष्टव्य हैं-

मित्रो की जेठानी जब उसे कहती है कि ससुर ने उसे बुलाया है तो मित्रो बिना किसी हिचक के अपने पति के बगल में बैठ जाती है। मित्रो की सास धनवंती कहती है, "समित्रारानी, माथे का कपड़ा तनिक नींवा कर ले, बेटी! तेरे ससुर-जेठ बैठे हैं!"

"मँझली ने नई ब्याही के-से नखरे से ओढ़नी माथे के नीचे कर ली और घूँघट की आँख बना इतराती-सी चहकने लगी। "[3]

उपन्यास के अन्य स्त्री पात्रों धनवंती, सुहागवंती, फुलावंती तथा जनको से मित्रो सर्वथा भिन्न है। सास और जेठानी की तरह न ही पति को भगवान मानती है और न ही देवरानी फूलावंती की तरह जेवर-गहने और जमीन-जायदाद उगाहने वाली मशीन। पी. रवि लिखते हैं कि उपन्यास के अन्य स्त्री पात्रों के प्रतिपक्ष में मित्रो है, "जो किसी समाज से, समाज के अलिखित कानूनों से डरती नहीं है। वह अपने परिवार का हिस्सा बनकर अपने मनुष्य सहज अधिकारों के लिए लड़ती है। स्त्री की अस्मिता एवं यौन-आजादी के संदर्भ में वह सास के सलाह-मशविरे को शिरोधार्य नहीं मानती है। वह सिर पर पल्ला नहीं डालती है, ससुर, जेठ तथा अन्य पुरुषों के आगे बिना हिचक के बैठती है।"[4] मित्रो आदर्श भारतीय नारी की उस छवि को तोड़ती है जिसके अंतर्गत उसे हमेशा मूक बने रहने और सबकी हाँ में हाँ मिलाने की ही आजादी होती है। प्रो. वीणा ठाकुर लिखती हैं, "मित्रो परिवार में रहते हुए भी परिवार की सीमाओं का उल्लंघन करना चाहती है। वह समाज के रीति-रिवाजों के जाल को अपनी जुबान की कैंची से काटकर तार-तार कर देना चाहती है।"[5]

'दिलोदानिश' की छुन्ना बीबी विधवाओं पर धार्मिक कुप्रथाओं के कारण लगाई गई बंदिशों का खुला विरोध दर्ज करती हैं। छुन्ना बीबी से पूरे परिवार को यही अपेक्षा है कि सादा खाएं, सफेद किनारे की धोती पहनें, भजन कीर्तन करें और आश्रम में रहें। परंतु छुन्ना बीबी, स्त्रियों को बेड़ियों में बांधने वाली कुप्रथाओं का पुरजोर विरोध करती हैं। विधवाओं पर थोपे गए नियम-कायदों और अंधविश्वास के विषय में छुन्ना बीबी कहती हैं, "एक नाम धर दिया हमारा, विधवा। वह तो हम

सगुण शास्त्र के बाहर, उस पर इनकी सब खामियों-नाकामियों के जिम्मेवार भी हमीं। इनके लिए दुबारा से निकाल लें बिछुए और टिकुली! हद है अंधविश्वास की!"[6] छुन्ना बीबी के देवर छैलबिहारी जब उनसे पूछते हैं कि हमने तो सुना था कि आप बदरीनाथ की यात्रा को निकलने वाली थीं। इस पर छुन्ना बीबी तपाक से जवाब देती हैं, "हम और यात्रा! किसी ने परकटी उड़ा दी होगी। ... वैसे बता दें अभी हमें तीर्थयात्रा की कोई सनक सवार नहीं। "[7] छुन्ना बीबी विधवा हैं तो उनके खाने-पीने और पहनने ओढ़ने के तरीकों पर भी प्रतिबंध है। छुन्ना बीबी विधवाओं के लिए निर्धारित सफेद किनारे की धोती को त्याग कर अपनी पसंद के ऐड़ीदार जूते, तंग जम्पर और उलटे पल्ले की साड़ी चुनती हैं। सास द्वारा रंग-बिरंगी धोतियों को पहनने से मना करने की हिदायत पर छुन्ना बीबी कहती हैं, "अम्मा, इन रिवाजों में क्या रखा है। हम ऐसी दुश्मनी अपने पर कभी न लादेंगे। "[8] छुन्ना बीबी अपने अधिकारों के प्रति पूरी तरह सजग हैं। भारतीय समाज की यह प्रथा रही है कि विधवा का पति की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता है। विधवा छुन्ना बीबी जब वापस ससुराल जाती हैं तो अपनी अलमारियों के बारे में पूछती हैं। सास और देवरानी से यह कहना कि "विधवा बहुओं के साथ जो चली आई है, क्या होती चली जाएगी?"[9] छुन्ना बीबी के जागरूक और सजग व्यक्तित्व को दर्शाता है। छुन्ना बीबी आधुनिक विचारों की समर्थक है। देवर, देवरानी के बच्चों को गोद लेने की बजाय वह किसी अनाथ बच्चे को गोद लेने की पक्षधर है। अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए वह शिक्षिका भी बनती हैं और अपनी पसंद से आर्यसमाजी भुवन से विवाह कर अपने जीवन को एक नया मोड़ देती है। उपन्यास 'दिलोदानिश' में छुन्ना बीबी तथा महकबानो दोनों को ही विद्रोही स्त्रियों के रूप में चित्रित किया गया है। इस विषय में रोहिणी अग्रवाल का मानना है कि महक और छुन्ना दोनों ही विद्रोहणियाँ हैं परंतु महक जहां एक पुरुष के अन्याय और दुर्व्यवहार पर दूसरे पुरुष का हाथ थाम लेती है वहीं छुन्ना का विद्रोह समाज की रूढ़िगत मान्यताओं के विरुद्ध है। वे लिखती हैं, "छुन्ना का विद्रोह किसी पुरुष को पाने या किसी की गिरफ्त से छूटने के लिए नहीं है। उसका लक्ष्य कहीं अधिक कठिन, कहीं अधिक ऊर्ध्व है। वह व्यक्तिगत लाभ या मुक्ति के लिए

नहीं लड़ रही। उसकी लड़ाई का क्षेत्र अधिक व्यापक है। उसका प्रतिद्वंद्वी एक व्यक्ति न होकर, समाज है। वरन समाज की चेतना को ऑक्टोपसीय पंजे में जकड़ने वाली संस्कारग्रस्तता है जो स्त्री-पुरुष को पूरक न मान स्वामी-दासी, शोषक-शोषित, भोक्ता-भोग्या मानती है। वह एक चिकित्सक की भांति रुग्ण समाज की चिकित्सा कर उसे स्वस्थ कर देना चाहती है। एक अभियंता की भांति जर्जर रूढ़ियों के मलबे को हटाकर एक नए कल्याणकारी समाज का निर्माण करना चाहती है। "[10]

इंदिरा गोस्वामी का उपन्यास 'दांताल हाथीर उने खोवा हौदा' में सारू गोसाइन तथा गिरिबाला दो ऐसे विधवा पात्र हैं जो विधवाओं पर लादे गए नियम-कानूनों को सहर्ष स्वीकार करने के बजाय, इन परिस्थितियों से सतत संघर्ष करते नजर आते हैं। सत्राधिकार की पुत्री गिरिबाला कम उम्र में विधवा होने के पश्चात मायके वापस आ जाती है। सत्र की औरतें उससे मिलने आने के बहाने उसके दुर्भाग्य का रोना रोती हैं। गिरिबाला स्वयं को लाचार समझने को अस्वीकार करते हुए क्रुद्ध स्वरों में कहती है, "तुम मुझसे यहाँ मिलने आई थीं। आई थीं कि नहीं? तुम अब मुझसे मिल चुकी हो। मैं अभी जिंदा हूँ, और जिंदा रहूँगी और तुम सबसे अच्छी जिंदगी जिऊँगी..। "[11] बचपन से ही गिरिबाला आमिश भोजन की शौकीन थी। विधवा होने के पश्चात उबला भोजन खा-खा कर उसकी जबान बेस्वाद हो गई थी। गिरिबाला जानती है कि धर्म-शास्त्र के अनुसार किसी वर्जित भोजन की सुगंध लेना भी महापाप है। अपने दादा, बड़े गोसाई के श्राद्ध-भोज में वह स्वयं को वर्जित भोजन खाने से रोक नहीं पाती। " गिरिबाला बड़ी तेजी से पालकी वाले कमरे में जाकर काली सेम के साथ पकाए गए गोश्त के बर्तन को उठा लेती है। वह सब कुछ भूल चुकी थी...अपना धर्म, रीति-रिवाज, अपने यहाँ का लोकाचार और दूसरी वर्जनाएं भी। उसने भोजन हड़बड़ी में निगलना शुरू कर दिया। "[12] गिरिबाला के इस प्रकार वर्जित भोजन खाने से पूरी हवेली में हलचल मच जाती है। गिरिबाला की माँ बड़ी गोसाइन इस कृत्य के लिए उसे पीटती है और शुद्धिकरण कराने के पश्चात उसे एक छोटे कमरे में बंद कर देती है। संघमित्रा डे लिखती हैं कि गिरिबाला का

यह व्यवहार अस्मिता निर्माण की जटिल प्रक्रिया को दर्शाने के साथ ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था में उसकी संबद्धता की असफलता को भी पुनर्स्थापित करता है, "Giribala's gastronomic behaviour reflects the complex process of identity construction and reestablish her failure to belong."[13] गिरिबाला वैधव्य को जीवन का अंत नहीं मानना चाहती। जीवन भर मृत पति की खड़ाऊँ पूजने की अपेक्षा वह अपना समय पठन-पाठन में लगाना चाहती है। गिरिबाला विधवाओं के लिए बनी उन तमाम बंदिशों को तोड़ना चाहती है जो जीते-जागते मनुष्य को मृतप्राय बना देती हैं। वह जर्मन शोधार्थी मार्क से कहती है, "मैं दुर्गा बुआ और छोटी गोसाइन की तरह केवल जिंदा रहने के लिए नहीं जीना चाहती। मेरे पिता का कहना है कि मेरा भविष्य और दुर्गा बुआ का भविष्य अब एक दूसरे से जुड़ गए हैं। दुर्गा ने अपना रास्ता खोज लिया है और तुम्हें भी खोजना होगा। तुम्हें सब रीति-रिवाज निभाने होंगे। तुम्हें अपने दिवंगत पति की खड़ाऊँ पर हर रोज पुष्प, तुलसी और जल चढ़ाना होगा। तुम्हें जानना होगा कि एक हिंदू स्त्री के लिए उसका पति ही सब कुछ होता है; जीवन रक्त की तरह। "[14] असमी पांडुलिपियों के संग्रहण में मार्क की सहायता करने के दौरान गिरिबाला मार्क के प्रति स्वयं के आकर्षण को पाप नहीं समझती। गिरिबाला के ससुराल वाले उसे वापस बुला रहे थे परंतु वह मार्क के साथ रहना चाहती थी। गोसाई परिवार की दकियानूसी मर्यादाओं को तोड़ते हुए वह आधी रात की तेज बारिश में मार्क के यहाँ पँहुच जाती है। शुद्धिकरण के लिए गिरिबाला को घास-फूस की बनी झोपड़ी में बैठा कर मंत्रोच्चार किया जाता है। कुटिया में आग लगाकर शुद्धिकरण की विधि के अनुसार गिरिबाला को बाहर बुला लिया गया। परंतु गिरिबाला के मन में कोई पश्चाताप नहीं था वह कुटिया से बाहर नहीं निकलती। शुद्धिकरण कराने वाला पुजारी कुटिया के बाहर से चिल्लाया, "वह अब भी वहीं है! वहीं है वह! भीतर! जल्दी करो! कुछ करो! छत जल रही है! उसे बचाओ!

लोगों की भयंकर चीख-पुकार ने जैसे कि आसमान फाड़ दिया हो। एक जबरदस्त धमाके के साथ छत नीचे आ पड़ी और उस बेजान-सी युवती को उसने अपने में जकड़ लिया।

गिरिबाला अब ऊँची-ऊँची उठती लपटों में गायब हो चुकी थी।"[15]

शायनो बेबी पॉल अपने आलेख 'इंदिरा गोस्वामीज गिरिबाला: ए टू डोर टू स्वराज' में लिखती हैं कि कलंकित और दमित जीवन जीने की अपेक्षा गिरिबाला आत्मदाह से अपना विरोध दर्ज करती है। सदियों से उसे और उसके जैसी तमाम स्त्रियों को किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता न देने वाली इस सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध यह उसका अंतिम क्रांतिकारी कदम था। अन्य विधवाओं से अलग गिरिबाला ऐसे रीति-रिवाजों को मानने से इनकार करती है जो व्यक्ति-स्वतंत्रता के प्राकृतिक नियमों के विरोध में बनाए गए हैं- एक स्वतंत्र राष्ट्र में आधुनिक स्त्री के लिए सही अर्थों में स्वराज यही है। "Giribala accepts death instead of a life of repression and disgrace. Her sacrifice is her final act of rebelliousness against a system which grants no freedom to her and many like her who have suffered through the ages. Unlike other widows she disobeys the rules that are construed against the natural law of human freedom, the true swaraj for a new woman in an independent nation." [16]

सत्राधिकार के छोटे भाई की पत्नी सारू गोसाइन आत्मनिर्भरता का परिचय देते हुए पति की मृत्यु के बाद अकेले रहने का निर्णय लेती है। अपने हिस्से की जमीन की देख-रेख का जिम्मा स्वयं पर लेकर अपने यजमानों के यहाँ भी जाती रहती है। सारू गोसाइन की ननद दुर्गा उसकी प्रशंसा करते हुए कहती है, "छोटी गोसाइन, तुम वाकई बहुत बहादुर हो। इससे पहले कभी किसी दामोदरिया गोसाइन ने विधवा होने के बाद अकेले रहने की हिम्मत नहीं की है। "[17] 'दांताल हाथिर उने खोवा हौदा' उपन्यास में धर्म को आधार बना कर स्त्रियों पर लगाए गए प्रतिबंधों और उन प्रतिबंधों का विरोध करते स्त्री पात्रों के संघर्ष का चित्रण किया गया है। सत्र के ब्राह्मणवादी नियम-कानूनों के अनुसार यदि कोई किशोरी विवाह से पूर्व मासिक चक्र की स्थिति में आ जाती है तो उसे अपवित्र समझ लिया जाता है तथा उसके परिवार को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। सत्र के पुजारी

की पुत्री इलिमन के समक्ष यही परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं। समाज से बहिष्कृत हो जाने के भय से उसका पिता इलिमन का विवाह ओपियम की तस्करी करने वाले एक नशाखोर से कर देना चाहता है। इलिमन सत्राधिकार के पुत्र इंद्रनाथ से विवाह करना चाहती है। इलिमन इन विपरीत परिस्थितियों में भी संघर्ष का मार्ग चुनती है। अपनी दादी के साथ वह इंद्रनाथ से मिलकर उसे अपनी स्थिति समझाने का भरसक प्रयत्न करती है। इलिमन तथा उसकी दादी से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर इलिमन के स्वार्थी पिता तथा ओपियम के तस्करों को गिरफ्तार कर लिया जाता है। इस संबंध में डॉ. चंद्रकांत आर. मांडलिक का कहना है कि जब स्त्रियाँ महसूस करती हैं कि परिस्थितियाँ उनकी सहनशक्ति से बाहर हैं तब वे स्वतंत्र होने की पुरजोर कोशिश करती है। वे पिंजड़े रूपी जीवन से बाहर आने का साहस स्वयं दिखाती हैं। "Here it is important to note that when women realize that the situation is beyond their toleration they begin to breathe freedom. They show boldness to come out of prison life."[18]

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में उपन्यास के प्रमुख स्त्री पात्रों डोरोथी और विधिबाला द्वारा पशुबलि का पुरजोर विरोध किया गया है। डोरोथी, छिन्नमस्ता के सन्यासी के साथ मंदिर के आस-पास के स्थानों पर जाकर पशुबलि के विरोध के लिए लोगों को संगठित करने में जटाधारी सन्यासी की सहायता करती है। उपन्यास में किशोरी विधिबाला का विवाह एक उम्रदराज विवाहित पुरुष से तय कर दिया गया है। विधिबाला के पिता का कहना है, "बंगरा के जमींदार हैं। पहले की एक औरत है। दो बेटियाँ भी हैं। बेटा नहीं है। इसी दुख में फिर ब्याह रचा रहा है। पैसेवाला आदमी है। हमारी लड़की को सुख से रखेगा। "[19] विधिबाला इस विवाह से दुखी है। विवाह तय होने के उपलक्ष्य में पिता द्वारा कामाख्या मंदिर में भैंसा-बलि दी जा रही है। बलि के लिए लाए गए भैंसे से विधिबाला को अपार स्नेह है। वह मंदिर के पुजारी के बेटे रत्नधर से कहती है, "मैंने सुना है तुम बलि के लिए लाए हुए पशुओं को चोरी से खोल देते हो और चुपचाप कहीं छोड़ आते हो? मेरे नाम से लाए इस भैंसे को भी तुम इसी तरह कहीं छोड़ आओ। मैं उसकी बलि होते हुए नहीं

देखना चाहती। "[20] रत्नधर, विधिबाला से पूछता है कि क्या उसने 'कालिका पुराण' पढ़ा है जिसमें बलिप्रथा के विषय में विस्तार से लिखा गया है। विधिबाला दृढ़ स्वरों में कहती है, "नहीं, मैंने शास्त्र नहीं पढ़ा है। जो शास्त्र ऐसे विधान देते हैं कि जानवरों की बलि हो- मुझे नहीं पढ़ना है। संस्कृत को देवभाषा कहा जाता है इसके बावजूद मैं ऐसा शास्त्र कभी नहीं पढ़ूँगी। "[21]

विधिबाला के कहने पर रत्नधर बलि के लिए लाए गए भैंसे को खूँटे से खोल कर दूर छोड़ आता है। इस पर विधिबाला का पिता सिंहदत्त शर्मा क्रोध से पागल हो जाता है। विधिबाला भी अपना निर्णय दृढ़ स्वरों में सुना देती है कि न ही भैंसे की बलि होगी और न ही वह उस लोभी उम्रदराज पुरुष से विवाह करेगी।

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'नीलकंठी ब्रज' की नायिका सौदामिनी को विधवा होने के पश्चात मन की शांति के लिए माता-पिता द्वारा ब्रजधाम ले आया जाता है। सौदामिनी से अपेक्षा है कि वह इसाई साथी का मेल-जोल छोड़ कर, पिता डॉक्टर रॉय चौधरी के साथ ब्रजधाम में दीन-हीन मरीजों की सेवा-शुश्रूषा में बाकी जीवन व्यतीत करे। सौदामिनी पूरी निष्ठा से इस कर्तव्य का पालन करती है परंतु वह विधवा होने के नाते अपने जीवन की इच्छाओं को मारना नहीं चाहती। माँ अनुपमा से वह दृढ़ शब्दों में कहती है, "मैं दूसरे की दया पर आश्रित रहकर अपना सारा जीवन नहीं बिता सकती। मैं महान नारी नहीं हूँ कि तुम लोगों की तरह जनहितकारी काम करते हुए जीवन काट दूँ। मैं स्वाधीन हूँ। मैं किसी से नहीं डरती। "[22] सौदामिनी एक ईसाई युवक से प्रेम करती है। इस बात का उसे कोई पश्चाताप नहीं है। धर्म के नाम पर इंसान-इंसान में भेद करने वाले आडंबरों का विरोध करते हुए अपने प्रेमी से कहती है, "वे, जो धर्म के कारण तुम्हें जाति के बाहर समझते हैं, कसाइयों से अधिक अच्छे नहीं हैं। मैं उन्हें कसाई ही कहूँगी। "[23]

4.2- दैहिक शोषण का प्रतिकार

स्त्रियों के साथ होने वाली यौन हिंसा स्त्री की स्वायत्तता तथा उसकी दैहिक अखंडता के प्रति एक जघन्य अपराध है। 'स्त्री संघर्ष का इतिहास'(1800-1990) की लेखिका राधा कुमार लिखती हैं, "बलात्कार ऐसा विषय रहा है जिस पर समकालीन नारीवादी आंदोलनों में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ध्यान केंद्रित किया गया। पहला कारण शायद यह था कि यह स्त्रियों के विरुद्ध पुरुषों द्वारा की जाने वाली अशोभनीय एवं क्रूर हिंसा और पुरुषों के पौरुष की अभिव्यक्ति का परिचायक था। दूसरे, क्योंकि बलात्कार एवं उस पर दिए जाने वाले ऐतिहासिक विमर्श स्त्री के प्रति उस दौर में समाज के संबंधों का रहस्योद्घाटन करते हैं तथा तीसरे, स्त्री देह के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण का पता चलता है। "[24]

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के' में बाल यौन शोषण का शिकार हुई नायिका रत्ती(रतिका) स्वयं के अस्तित्व की सही पहचान के लिए सतत संघर्षशील नजर आती है। रत्ती के संघर्ष के विषय में कृष्णा सोबती का कहना है, "रत्ती का संघर्ष अपनी देह पर छिन्न-भिन्न उस लहर से है जो मन से तन और तन से मन तक तरंगित होती है और व्यक्ति के अस्तित्व का संवेदनात्मक व्याकरण बन जाती है। रत्ती की स्थिति उच्छृंखलता में बदल सकती थी। रत्ती अपने स्वयं समर्थ अनुराग विहीन खिन्नता के भाव से, उलझाव से मुक्त होने की निपट निरंतर चेष्टा करती है। बलात्कार जैसी घटना और उसकी विद्रूप विसंगति उसे कौमार्य की जिस शिलालेखी ठंडी खिन्नता में जकड़ लेते हैं, वह किसी भी बच्चे को आतंक से घेर लेने की नियति प्रस्तुत करते हैं, किशोर और किशोरी दोनों को। कोई भी मनोवैज्ञानिक व्याधि तन-मन के बीच टुकड़ों की उलझाव भरी बाँट का गणित लागू कर सकती थी, पर रत्ती ने अलगाव में अपने को अपने से विलग नहीं किया यही उसकी जुर्रत रही। "[25] हमारे तथाकथित सभ्य समाज में आज भी बलात्कार जैसी हिंसक घटना में अभियुक्त के बजाय भुक्तभोगी को ही कसूरवार ठहराया जाता है। इस घटना के उपरांत अपने समवयस्क साथियों डिंपी, पिक्कू, अज्जू, तारा, तोषी, त्रिलोकी और पाशी के सम्मुख उपहास का

पात्र बनी रत्ती के व्यवहार में बाल्यावस्था से ही आक्रामकता आ जाती है। बचपन की यही 'आक्रामकता' वयस्क होते-होते रत्ती के व्यक्तित्व को नितांत उदासीन बना देती है। "जिस सड़क का कोई किनारा नहीं- रत्ती वही है। वह आप ही अपनी सड़क का 'डेड-ऐंड' है। आखिरी छोर है। "[26] अतीत के काले अध्याय से स्वयं को मुक्त कराने की व्यग्रता में रत्ती का विभिन्न पुरुष मित्रों राजन, वीरेश, रंजन, बाली, सुब्रमणियम, रोहित, जयनाथ, श्रीपत, सुमेर तथा महेन इत्यादि से संबंध उसकी मानसिक पीड़ा को चित्रित करता है।

इस संबंध में रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं, "एक के बाद एक कितने ही पुरुष मित्रों से शारीरिक नैकट्य स्थापित कर रत्ती परंपरागत नैतिक मूल्यों की धज्जियां उड़ाती दिखाई देती है, लेकिन सत्य यह नहीं। वह 'प्लेजर सीकर' नहीं; आधुनिकता की आड़ में विद्रोह का झण्डा लेकर चलने वाली उच्छृंखल कामुक नारी नहीं। देह, उसके निकट, वासनापूर्ति का जरिया नहीं, एक सर्द अभिशाप तले दबी घरेलू रिश्तों की गरमाहट महसूस करने की तड़प है। "[27]

राजन, रोहित जयनाथ जैसे पुरुषों के विवाह का उद्देश्य पत्नी पर अपना अधिकार जमाना होता है। जयनाथ रत्ती से विवाह कर अपनी संपत्ति का वारिस प्राप्त करना चाहते हैं। रत्ती विवाहोपरांत स्वयं को मात्र बच्चा पैदा करने की मशीन में परिणित होते नहीं देखना चाहती इसलिए वह जयनाथ को टका सा जवाब देती है। "अपने बच्चों के लिए तुम्हें कोई और माँ ढूँढ़नी पड़ेगी। बेटे बनाने की कला तो इस औरत के पास है नहीं। "[28] श्रीपत के आमंत्रण पर वह श्रीपत की पत्नी ऊना की अनुपस्थिति में उनके शयनकक्ष तक तो जाती है परंतु वह ऊना के साथ विश्वासघात कर अपनी खुशी हासिल नहीं करना चाहती इसलिए वह सधे स्वरों में कहती है, "तुम्हारी कृतज्ञ हूँ श्रीपत, पर तुम दोनों का यह कमरा, हम दोनों के लिए नहीं है। "[29] दिवाकर के अतिरिक्त रत्ती के संपर्क में आने वाले प्रायः सभी पुरुष उसे देह के स्तर पर भोगना चाहते हैं पर रत्ती के मना कर देने पर वे उसे ठंडी, निर्मम और क्रूर औरत की संज्ञा देते हैं। दिवाकर पूरी निष्ठा से रत्ती को अपनाना चाहते हैं परंतु रत्ती, दिवाकर और प्रीति के बीच दीवार नहीं बनना चाहती। वह दिवाकर को समझाते हुए कहती है,

"नहीं दिवाकर, कुछ भी हथियाना नहीं है। तुम पुल के नीचे बहते हो और अपने किनारों से बंधे हो। और मैं... पुल पर से गुजर-भर जाने को हूँ। "[30] पाप-पुण्य और नैतिक-अनैतिक के मापदंडों से परे रत्ती के चरित्र को सामाजिक मान्यताओं तथा परंपराओं के बंधन में नहीं बाँधा जा सकता। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में, "रत्ती 'भोग्या' या 'वस्तु' मात्र बन जाने की नियति को दृढ़तापूर्वक अस्वीकारती हुई संवेदनशील आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है। "[31]

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'अहिरण' की निर्मला समाज द्वारा स्त्रियों पर लगाई गई बंदिशों का विरोध करती है। युवावस्था में सरेबाजार बलात्कार की शिकार, कुशाग्रबुद्धि निर्मला को मजबूरन तपेदिक रोगी 'पांडे' से विवाह करना पड़ता है। निर्मला साइट पर काम करने वाले श्रमिकों के बच्चों को निःशुल्क पढ़ाना चाहती है। वह मैनेजर हर्षुल से कहती है, "मैं हफ्ते में एक बार झीलपारा के इन बच्चों को पढ़ाने आऊँगी। आप अगर चाहें तो मेरे लिए एक चटाई का शेड बनवा सकते हैं। "[32] निर्मला, पांडे के मित्र मैनेजर हर्षुल के प्रति आकर्षित है और इस बात को स्वीकारने में उसे कोई पश्चाताप नहीं है। निर्मला को दैहिक सुख देने में अक्षम पति के विषय में बताते हुए वह हर्षुल से कहती है, "मुझे एक और शंका है, आपने उसे ध्यान से देखा है, उसमें कोई तेज नहीं रह गया है। इस तरह की बात कहने के लिए कोई नहीं है। पता नहीं आप मेरी इस घुटन और बेचैनी को ढंग से समझ भी पाएंगे या नहीं?"[33] पति की मृत्यु के बाद वह दोबारा हर्षुल से संपर्क करती है। हर्षुल से विवाह कर निर्मला को लगता है कि अब वह समाज-सेवा करते हुए सुख से जीवन यापन कर सकती है। निर्मला को इस बात से आघात लगता है कि प्रौढ़ हर्षुल उसे सुखी देखने के लिए जवान इंजीनियर महेश ठाकुर के साथ घूमने-फिरने के लिए प्रेरित करता है। निर्मला की तुलना मशहूर अमेरिकन नृत्यांगना 'ईज़ाडोरा डंकन' से करने वाला महेश ठाकुर उसे मात्र शरीर के स्तर पर पाना चाहता है। निर्मला भी महेश ठाकुर के प्रति आकर्षित है परंतु वह दैहिक प्रेम को ही सब कुछ नहीं मानती, वह महेश से कहती है, "सुनो ठाकुर, मैं बिना प्रेम के जी नहीं सकती और मेरे लिए शारीरिक प्रेम ही सब कुछ नहीं है। "[34]

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में जब बदमाशों द्वारा डोरोथी ब्राउन के बलात्कार की कोशिश की जाती है तो डोरोथी अदम्य साहस का परिचय देते हुए उन बदमाशों का डटकर सामना करती है। "एक प्रचंड चीख से काँप उठा पूरा दारभाँगा-घर। डोरोथी को जैसे कोई दुर्दम ईश्वरीय शक्ति हासिल हो गई थी कि एक ही झटके में उसने अपने ऊपर चढ़ने की कोशिश करने वाले आदमियों को उछाल फेंका। "[35] डोरोथी पूरे साहस और सम्मान के साथ अपराधियों की पहचान के लिए पुलिस चौकी भी जाती है। वहाँ निर्दोष स्वयंसेवियों को अपराधियों की श्रेणी में खड़ा देख वह अवाक रह जाती है। गरीब पुलू ढोलकिया को अपराधियों की कतार में खड़ा देख वह चीख उठती है, "इसे घर जाने दो। इसका लड़का मर रहा है। यह सब क्या हो रहा है? हद है! मैंने जो सुना था, वही सही है। यहाँ गरीब गाँववालों को भी अपना हिस्सा दरोगा को खुश रखने के लिए देना पड़ता है। "[36] डोरोथी जानती है कि उसके ऊपर यह घृणित हमला अन्य किसी ने नहीं बल्कि उसके पति हेनरी ब्राउन ने कराया है। वह विलियम से आक्रोश भरे स्वर में कहती है, "नहीं, नहीं, अब उन्हें मेरा पति मत कहना-मैंने अपना रास्ता ढूँढ़ लिया है!"[37] डोरोथी अपनी स्वतंत्र पहचान बनाती है और जटाधारी के साथ मिल कर कामाख्या के परिसर में बलि विधान बंद करने के अभियान में शामिल हो जाती है।

4.3- स्वाभिमानी, संघर्षशील तथा मानवतावादी स्त्रियाँ

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' को प्रायः मित्रो की बेबाकबयानी और बोल्ड ट्रीट्मेंट के लिए जाना जाता है परंतु, उपन्यास में मित्रो के मानवतावादी रूप का भी चित्रण किया गया है। देवरानी फूलावंती के छल-कपट पर मित्रो कहती है, "अरी, जान रख, जब तक दिल यह तेरा कंगला तब तक झगड़े-फिसदों में ही झीखती-कलपती रहेगी, रानी!"[38] पति सरदारी लाल को बाजार के कर्जे से फिक्र में डूबा देख "मित्रो ने ऐडियाँ उठा पड़छत्ती पर से टीन की सन्दूकची उतारी। ताली लगा लाल पट्ट की थैली निकाली और घरवाले के आगे रख बोली- यह दमड़ी दात परवान करो, लाल जी! कौन इस नाँवे के बिना मित्रो की बेटी कंवारी रह जाएगी?"[39]

घर पर आए आर्थिक संकट के समय अपनी पूरी जमा-पूंजी पति को दे देना , मित्रो की मानवीय मूल्यों के प्रति अगाध आस्था को दर्शाता है। मित्रो के चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण से उसकी स्वाभिमानी छवि उभर कर आती है जो परिवार तथा समाज में अपने लिए समानता और मान-सम्मान की आस में सतत संघर्षशील है।

कृष्णा सोबती का उपन्यास 'तिन पहाड़' उनकी पूर्व प्रकाशित कृतियों से सर्वथा भिन्न भावुकता के धरातल पर लिखी गई रचना है। जया, श्री, तपन तथा ऐडना के बीच बुनी गई कथा की मुख्य पात्र जया है। अनाथ जया, कोलकाता में श्री के साथ पली-बढ़ी है। श्री और जया के बीच का प्रेमाकर्षण श्री की अनुभवी माँ की आँखों से छिपा नहीं है। परंतु श्री के विदेश चले जाने पर जीवनसाथी के रूप में ऐडना को चुन लेने से भीतर तक आहत जया दार्जिलिंग आ जाती है। जया अतिशय भावुक है वह श्री से प्रेम तो करती है परंतु अपने स्वाभिमान की कीमत पर नहीं। जया समझती है कि कठिन समय में तपन ने उसका साथ दिया है, तपन के प्रति श्री का रूखा व्यवहार देख कर वह श्री से पूछ पड़ती है, "मन में आ जाने से ही जिस-तिस का अपमान करते चलेंगे, यह अधिकार आपको किसने दिया, श्री दा?"[40] यहाँ जया तपन के प्रति आकर्षण तो महसूस करती है परंतु वह तपन और पुतुल के बीच दीवार नहीं बनना चाहती। भविष्य के प्रति सशंकित अतिशय भावुक जया दार्जिलिंग में उफनती तीस्ता नदी में कूद कर अपना जीवन समर्पित कर देती है।

'ए लड़की' की वृद्धा माँ अम्मू यद्यपि जीवन पर्यंत पति तथा परिवार के अनुशासन में रही है परंतु वह अपने अस्तित्व के प्रति सचेत तथा स्वाभिमानी स्त्री है। विवाह की शुरुआत में जब अम्मू की सास कालका-शिमला सफर में उससे पूछती हैं कि बहू चक्कर तो नहीं आ रहे तो वह हर बार न में उत्तर देती है। एक स्त्री का 'न' कहना पुरुष के अहं पर एक चोट की भांति होता है। इससे संबंधित उपन्यास की निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं- "तुम्हारे पिताजी को मेरी यह 'न' पसंद न आई।

रौब से बोले-जवाब तो ढंग से दो। हो ही नहीं सकता कि तुम्हें चक्कर न आता हो।

तुम्हारे दादा साहिब साथ थे इसलिए कुछ कहने में संकोच हुआ। फिर सोचा सही बात कहने में हर्ज भी क्या है!

मैंने कह ही दिया-मेरा फैसला है कि मुझे चक्कर नहीं आना चाहिए तो आएगा कैसे!"[41]

अम्मू ने जीवन अपनी शर्तों पर तो नहीं जिया पर वह अपने निर्णयों से संतुष्ट रही है। जीवन पर्यंत घर-गृहस्थी में उलझी रही अम्मू के पास जीवन अनुभवों की खट्टी-मीठी पोटली है। अंतिम दौर में बेटी के यह पूछने पर कि कोई चिंता-पछतावा तो नहीं? अम्मू कहती है, "जिंदगी में कुछ नोना-नमकीन और कुछ मिश्री-मीठा। इतना ही। पछतावा कैसा! सबकी जन्मपत्री चितकबरी ही हुआ करती है। हर्ष-शोक, लाभ-हानि, ऊँच-नीच, सब बारी-बारी अपनी झलक दिखाते हैं। ऐसा किसी के हाथ में नहीं कि फुलझड़ियाँ ही छूटती रहें। सब गरम-सर्द समय में घुल-मिल जाते हैं। [42] अम्मू अतीत में झाँकने पर यह अनुभव करती है कि परिवार के समक्ष उसने अपनी इच्छाओं की बलि चढ़ा दी। बेटी जब उसे यह आश्वासन देती है कि आपने ही पूरे घर को संभाला है। इस पर अम्मू बोल पड़ती है, "मैं तुम सबकी माँ जरूर हूँ। पर अलग हूँ। मैं मैं हूँ। मैं तुम नहीं और तुम मैं नहीं। "[43]

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'चेनाबेर स्रोत' की सोनी श्रमिक वर्ग की स्त्रियों के संघर्ष को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है। गर्भावस्था के कठिन समय में वह चेनाब नदी पर बन रहे पुल के ऐक्वेडक्ट निर्माण की साइट पर मजदूरी करने के लिए मजबूर है। कंसट्रक्शन कार्यों की वजह से प्रकृति की दुर्दशा देख कर सोनी मन ही मन सोचती है, "इधर-उधर पड़े ये औजार, आक्सिजन सिलेंडर, बाल्टियाँ तथा कंक्रीट प्लेट्स इत्यादि हरी-भरी धरती के लिए किसी भयानक घाव से कम नहीं। "[44]

एक अन्य श्रमिक स्त्री शांति उसके पेट की ओर दिखाते हुए कहती है, "इसके बारे में बिना सोचे तुम कालाहुंडी से यहाँ तक चली आईं। तुमको गर्भपात करा लेना चाहिए था। अब तुम्हें पता

चलेगा कि इस नमक के बोरे के साथ तुम्हें कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा। ”[45] सोनी, श्रमिक गौरीशंकर की विधवा है और गौरीशंकर के वृद्ध और बीमार पिता रामवीर के साथ रहती है। बूढ़े रामवीर के साथ रहने वाली सोनी अन्य श्रमिक स्त्रियों धनमई, पार्वती, राघम्मा तथा संतोषी इत्यादि के बीच उपहास का पात्र बन गई है। साइट की श्रमिक स्त्रियाँ उसके और रामवीर के विषय में तरह-तरह की बातें बनाती हैं। राघम्मा का दिलफेंक पति सदाशिव उसे अपने साथ रात भर के लिए धर्मशाला ले जाना चाहता है। सोनी के मना करने पर वह उसे वेश्या कह कर बुलाता है। सदाशिव के शब्द उसे भीतर तक विचलित कर देते हैं। सदाशिव के इस उच्छृंखल व्यवहार के बावजूद सोनी द्वारा सदाशिव के बच्चों के प्रति सहानुभूति रखना उसके मानवतावादी रूप को चित्रित करता है। गर्भावस्था में मजदूरी करते हुए अपना और वृद्ध रामवीर का भरण-पोषण करना सोनी के सामने एक बड़ी चुनौती है। सोनी इसी साइट पर शिवन्ना से मिलती है जो उसका पहला पति था। कलाहुंडी में पड़े अकाल के समय वह सोनी को छोड़ कर शहर आ जाता है। स्वाभिमानी सोनी तमाम कठनाइयों के बावजूद शिवन्ना को दोबारा नहीं अपनाती है। परंतु शिवन्ना अब बदला हुआ व्यक्ति है। साइट पर हुए हादसे में सदाशिव की मृत्यु हो जाने पर वह कंपनी से उसके लिए मुआवजे की मांग करता है। साइट पर लोग शिवन्ना और मैनेजर की पत्नी बाई साहिबा के विषय में तरह-तरह की बाते करते हैं। परंतु शिवन्ना बाई साहिबा को आदर की दृष्टि से देखता है। सोनी आवेश में आकर ‘ग्राफ कैम्प’ में अपना शरीर बेचने को बाध्य होती है परंतु शिवन्ना मानता है कि सोनी माँ वैष्णो देवी की तरह ही पवित्र है। शिवन्ना यह प्रस्ताव रखता है कि वह उसके होने वाले बच्चे तथा वृद्ध रामवीर का पूरा ख्याल रखेगा। इस प्रकार सोनी अपनी शर्तों पर शिवन्ना का प्रस्ताव स्वीकार करती है।

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास ‘मामरे धरा तारोवाल’ में नायिका नारायणी कर्मठ तथा महत्वाकांक्षी युवती है। वर्कसाइट पर नियुक्त एक इंजीनियर के प्रेम में पड़ी नारायणी के सपने तब टूट जाते हैं जब इंजीनियर का वहाँ से तबादला हो जाता है । मजबूर नारायणी का विवाह तपेदिक-रोगी से

करा दिया जाता है। वर्कसाइट पर कठिन श्रम करते हुए वह बीमार पति तथा बच्चों का भरण-पोषण कर रही है। साइट पर चल रही श्रमिकों की अनिश्चितकालीन हड़ताल से श्रमिक वर्ग भुखमरी के कगार पर आ जाता है। लाचार नारायणी को पति के इलाज हेतु आवश्यक पैसों के लिए कंपनी के अफसर ठाकुर साहब के समक्ष अपना सर्वस्व समर्पित करना पड़ता है। नारायणी उन श्रमिक नेताओं का भी विरोध करती है जो अपने स्वार्थ के लिए हड़ताल बंद नहीं करना चाह रहे हैं। जब दो मजदूर रामू और बामू, देह बेचने के ऐवज में ठाकुर साहब से मिलने वाले पैसे नारायणी से छीन लेते हैं तो वह उन्हें धिक्कारते हुए पूछती है कि जब मेरा परिवार मुसीबत में था तब मजदूर यूनियन के लोग कहाँ थे? नारायणी दृढ़ स्वरों में कहती है कि अपना परिवार चलाने के लिए उसे वेश्या बनने से भी कोई परहेज नहीं है। परंतु बार-बार के दैहिक शोषण से त्रस्त नारायणी, सोए हुए स्त्री-लोलुप ठाकुर साहब की हत्या कर देती है।

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'नीलकंठी ब्रज' की सौदामिनी माता-पिता के दबाव से ब्रज आने को मजबूर जरूर हुई है परंतु वह अन्य विधवाओं की भांति अपना जीवन दूसरों की दया और मात्र ईश्वर का नाम लेकर नहीं काटना चाहती। वह शिक्षित स्त्री है। पिता के अस्पताल में मरीजों का ध्यान रखने वाली सौदामिनी आर्थिक रूप से भी आत्मनिर्भर बनने की चेष्टा करती है। कृष्ण मंदिर के बूढ़े मैनेजर से सौदामिनी कहती है कि वह मंदिर में नौकरी की तलाश में आई है। आवश्यकता पड़ने पर वह भण्डारी तथा रसोइये की सहायिका का कार्य भी कर सकती है। बूढ़े मैनेजर के ये कहने पर कि वह युवा स्त्रियों को काम पर नहीं रखते हैं, सौदामिनी निराश हो जाती है।

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की डोरोथी ब्राउन स्वाभिमानी, साहसी और मानवतावादी स्त्री है। कामाख्या मंदिर के गरीब पुलू ढोलकिया का पुत्र गजेन क्षय रोग से पीड़ित है पर उसके पास इलाज के लिए पैसे नहीं हैं। मंदिर के वरिष्ठ कर्मचारी हरकांत शर्मा से सहायता मांगने पर पुलू ढोलकिया को खाली हाथ लौटा दिया जाता है, परंतु डोरोथी निःस्वार्थ भाव से उसकी सहायता करती है। डोरोथी स्वाभिमानी है। पति हेनरी ब्राउन के एक खासी महिला से संबंध

उजागर होने पर वह पति का घर छोड़ कर अकेले ही जीर्ण-शीर्ण द्वारभाँगा महल के एक कमरे में रहना शुरू कर देती है। उसके वहाँ रहने का काटन कॉलेज के छात्रों द्वारा विरोध किया जाता है। उनमें से एक छात्र जटाधारी सन्यासी से बोलता है, "महाप्रभु, उस अंग्रेज महिला के यहाँ रहने के कारण लोगों के मन में डर और शक बढ़ता जा रहा है। ... हम लोगों का जुलूस शुरू होने से पहले ही उस अंग्रेज महिला को यहाँ से हटा दीजिए। "[46] डोरोथी अपने निर्णय पर अडिग रहते हुए कहती है, "मैं अपनी इच्छा से यहाँ आई हूँ, मुझे यहाँ से धक्के देकर कोई भी बाहर नहीं निकाल सकता। "[47] डोरोथी, हेनरी ब्राउन से अलग होने के बाद ब्राउन द्वारा उसके नाम की गई संपत्ति को खासी महिला की होने वाली संतान के लिए छोड़ देती है। वह विलियम से कहती है, "कुछ दिन पहले तक मेरे पति रह चुके ब्राउन की खासी पत्नी से जिस संतान का जन्म होगा, उसके लिए है ये वसीयत। "[48] विलियम उसे समझाता है कि अभी दोनों का विवाह नहीं हुआ है इस पर वह दृढ़ स्वरों में कहती है कि अगर वह संतान अवैध भी हुई तो भी वह वसीयत में उसका नाम रखेगी।

4.4- पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की यौनिक अभिव्ययक्ति

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में किसी स्त्री द्वारा यौनिक आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करना अनैतिक तथा मर्यादा के विरुद्ध माना जाता है। जर्मेन ग्रीयर के अनुसार स्त्रियों की सामाजिक कन्डीशनिंग ही ऐसी की जाती है कि वे अपनी यौनिक अभिव्यक्तियों के विषय में सदैव चुप रहें। अपनी पुस्तक 'बधिया स्त्री' में जर्मेन लिखती हैं, "स्त्री के पालन-पोषण के जरिए उसे ऐसा बनाया जाता है कि उसमें एक बधिया की खूबियाँ विकसित हों। गोल-मटोल, सुंदर, सभ्य, उदार और क्लांत, अतिसुकुमार प्राणी जिसकी अपनी यौनिक अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं। एक अ-यौनिक प्राणी। स्त्री की लैंगिकता को हमेशा ढँका गया और विरूपित किया गया है। इस अनुकूलन के जरिए यह हुआ कि स्त्री को एक यौन-वस्तु के रूप में देखा गया। दूसरे प्राणियों(पुरुषों) के इस्तेमाल और आस्वादन के लिए। "[49]

उपरोक्त संदर्भ में मित्रो, महकबानो, गिरिबाला, सौदामिनी, शशिप्रभा तथा सारू गोसाइन इत्यादि भारतीय कथा साहित्य के अभूतपूर्व स्त्री पात्र हैं जो अपनी स्वाभाविक इच्छाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम से स्त्री की 'बधिया छवि' को तोड़ते प्रतीत होते हैं।

मित्रो पंजाब के एक कस्बे के संयुक्त परिवार की मझली बहू है जो पति सरदारी लाल से असन्तुष्ट है। यह असंतुष्टि इस बात पर नहीं कि पति उसे गहने-कपड़े नहीं बनवा रहा बल्कि यह असंतुष्टि पति से मनचाहा दैहिक सुख न मिलने को लेकर है। जिठानी सुहागवंती के पूछने पर कि वह इस राह-कुराह कैसे पड़ी, मित्रों का उत्तर है, "सात नदियों की तारू, तवे सी काली मेरी माँ और मैं गोरी-चिट्टी उसकी कोख पड़ी। कहती है, इलाके के बड़भागी तहसीलदार की मुहांदरा है मित्रो। अब तुम्हीं बताओ जिठानी, तुम जैसा सत-बल कहाँ से पाऊँ-लाऊँ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। ... बहुत हुआ हफ्ते-पखवारे... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास कि मछली सी तड़पती हूँ!"[50] मित्रो हिंदी कथा साहित्य की अन्य नायिकाओं की भांति त्यागमयी मूर्ति नहीं बल्कि हाड़-मांस से बनी नारी है जो जीवन का भरपूर आनंद लेना चाहती है। "मित्रो रानी! चिंता-फिकर तेरे बैरियों को! जिस घड़ने वाले ने तुझे घड़ दुनिया का सुख लूटने को भेजा है, वही जहां का वाली तेरी फिकर भी करेगा!"[51]

'मित्रो मरजानी' के विषय में प्रसिद्ध आलोचक निर्मला जैन का कहना है, "स्त्री की सहज दैहिक आवश्यकताओं की बेबाक स्वीकृति करने वाली पहली सशक्त क्लासिक रचना कृष्णा सोबती का उपन्यास 'मित्रो मरजानी' था। हो सकता है कि उससे बहुतों के नैतिक बोध को कुछ परेशानी पैदा हुई हो, पर सोबती ने एक ऐसी अनछुई सच्चाई के ऊपर से सदियों पुराना पाखंड का पर्दा उठा कर एक तरफ रख दिया था कि पाठक एकबारगी सोबती की कलम की ताकत के सामने सकते में आ गया। यह एक शुरुआत थी जिसने रास्ता दिखाया था, अनुकरण का नहीं, निर्भयता से सच्चाई का सामना करने का। "[52]

कृष्णा सोबती द्वारा हिंदी कथा साहित्य में मित्रो जैसे पात्र का सृजन करना एक क्रांतिकारी कदम था। इससे पूर्व पाशो और जया के माध्यम से नारी के ममतामयी और अति भावुक रूप का परिचय पाठकों से कराने वाली कृष्णा सोबती ने मित्रो के माध्यम से ऐसे पात्र का सृजन किया जिसने अपनी बेबाक बयानी से हिंदी कथा साहित्य में स्त्री की दैहिक आवश्यकताओं की मूकवाणी को आवाज दी। कृष्णा सोबती का इस विषय में कहना है, "औरत का शरीर हमेशा ही पुरुष के लिए 'सेक्स सिंबल' रहा है। मित्रो ने एक कदम आगे बढ़ कर, अपने शरीर की मालकिन होकर अपनी पहचान अर्जित की और इस छवि को बदला। उसकी मौखिक अभिव्यक्तियाँ, उसकी कामेच्छा, मनोभावों और शारीरिक संवेदन का मिला-जुला रूप था जिससे उसकी अपनी पहचान वजूद में आई। "[53]

राजेंद्र यादव मित्रो को निर्भीक, दबंग, बेबाक और बीहड़ बताते हुए कहते हैं, "मित्रो को लेकर जो तूफान उठा था उसका कारण सिर्फ यही था कि मित्रो हिंदी साहित्य की एकमात्र नारी है जो अपनी जरूरत को अपनी जबान में कहती है, अपनी भाषा में अपने होने की घोषणा करती है। यानी संबंधों और मर्यादाओं पर हिकारत और उपेक्षा से हँसकर अपनी तरह चलती है। मुझे मित्रो हिंदी की अकेली ऐसी कथा-नारी लगती है जो सदियों से नारी पर लादे गए संस्कारों-संबंधों, सुंदर-सुंदर उपमाओं को ललकारती, मुँह चिढ़ाती और उन्हें झुठलाती हुई अपनी मूलभूत जरूरत और जबान के साथ हमारे सामने आ खड़ी हुई हो, छिन्नमस्ता काली की तरह और मानो हम उसके तेज को बर्दाश्त नहीं कर पाते..."[54]

मित्रो के इस आचरण के कारण ही आलोचकों के एक बड़े वर्ग ने उसे बोल्ड और अश्लील घोषित कर दिया था, परंतु यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि क्या स्वाभाविक इच्छाओं की अभिव्ययक्ति को अश्लीलता का नाम देना उचित है? इस संबंध में प्रो. वीणा ठाकुर का वक्तव्य महत्वपूर्ण है- "मित्रो की यह बहुत बड़ी उपलब्धि है कि वह अपनी यौन जरूरतों की मांग पर सोचने के लिए परिवार के माध्यम से पाठकों को भी बाध्य करती है। साथ ही नैतिकता के छद्म में उलझे भारतीय समाज को झकझोरती भी है। "[55]

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'दिलोदानिश' की महकबानो, कृपानारायण से अपने मन की बात कहने में हिचकती नहीं है। कृपानारायण का यह मानना है कि दैहिक इच्छाओं को इस तरह से व्यक्त घर से बाहर की औरतें ही कर सकती हैं, खानदानी औरतें इस मामले में मुँह नहीं खोलतीं। इस संदर्भ में उपन्यास की कुछ पंक्तियाँ निम्नवत हैं-

"बानो ने वकील साहिब को ओंठों से ढक लिया। चूमकर फुसफुसाई- बंदे की नहीं, देवता की सवारी थी।

वकील साहिब खुश हुए। मन-ही-मन देवी का ध्यान किया। उसी की बख्शीश है कृपा!

रंगदार चूड़ियों-भारी कलाइयों में महक उन्हें लजरती-मचलती परी-सी लगने लगी। सहलाकर पूछा-क्यों?

महकबानो ने साँवली हंसी हँसकर कहा-फकत तवज्जो से काम नहीं चलता, हुजूर! कमर में भी बूता होना चाहिए। "[56]

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'नीलकंठी ब्रज' में लेखिका ने इस तथ्य का भी जिक्र किया है कि किस प्रकार धर्म के नाम पर विधवा राधेश्यामियों की यौन इच्छाओं को दबा दिया जाता था। इस संबंध में डॉ. राजुल सोगानी अपने आलेख 'केज्ड बर्ड्स: विडोज इन द नॉवेल्स ऑफ इंदिरा गोस्वामी' में लिखती हैं, "In her novel Indira Goswami has showcased the sad plight of these Hindu widows, suffering hardships which she herself did not has to face: financial deprivation, the tyranny of cruel and dehumanizing conventions, the total suppression of sexuality and the impossibility of release from an oppressive existence except in fantasy or in death."[57] सौदामिनी और शशिप्रभा ऐसे विधवा पात्र हैं जो अपनी यौनिक इच्छाओं को लज्जा और क्षोभ का विषय न मान कर इसे मानव जीवन की स्वाभाविक आवश्यकता मानते हैं। कुंजबिहारी मंदिर के पुजारी

आलमगढ़ी के साथ मंदिर के कामों में लगी शशिप्रभा कम उम्र की विधवा है। मंदिर बिक जाने के बाद उसके पास रहने का कोई ठिकाना नहीं रह जाएगा। सौदामिनी, शशिप्रभा को सलाह देती है कि वह शादी कर के आलमगढ़ी के साथ रह सकती है। परंतु शशिप्रभा का कहना है कि आलमगढ़ी पौरुषहीन है और वह कृष्ण मंदिर के एक बाल ब्रह्मचारी के प्रेम में पड़ चुकी है। डॉ. राय चौधरी और अनुपमा की बेटी सौदामिनी कम उम्र की विधवा है। वह चरणबिहारी से पूछती है, "लोग कहते हैं अभी भी मैं बूढ़ी राधेश्यामी स्त्रियों जैसी नहीं लगती हूँ। किसी समय लोग मेरे रूप-लावण्य की बहुत तारीफ किया करते थे। क्या आपका मन मेरी ओर आकर्षित नहीं होता?"[58] सौदामिनी को कलाकार चंद्रभानु राकेश सुझाव देते हैं कि उसे भी अपने पिता की तरह अस्पताल में मरीजों की सेवा-सुश्रुषा में अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। सौदामिनी इस सुझाव के लिए तैयार नहीं थी, वह चंद्रभानु से कहती है, "विश्वास करो मैं अभी भी हाड़-मांस की मात्र औरत ही हूँ, सांसारिक आवेशों और इच्छाओं से घिरी हुई। "[59] सौदामिनी बिना किसी आत्मग्लानि के अपने ईसाई प्रेमी से मिलने जाती है और उससे स्वयं को आलिंगन में बांधने का निवेदन करती है। सौदामिनी इस तथ्य से भलीभाँति परिचित है कि आज के बाद से उसे इस पवित्र ब्रजभूमि के लिए अपवित्र समझा जाएगा, इसलिए वह अपने निर्णय पर अडिग रहती है और भारी तूफान के बीच भी वापस लौटने के बजाय अपने प्रेमी के साथ रुकने का निर्णय लेती है। भयंकर तूफान के बाद सौदामिनी की साड़ी का चिथड़ा रेत में दबा मिलता है। सौदामिनी इन सांसारिक बंधनों से मुक्त हो चुकी थी। लोग उसके चरित्र पर छींटाकशी कर रहे थे परंतु सौदामिनी ने सन्यासिन बनने के मिथ्या आडंबर को ठुकरा कर अपनी इच्छाओं को अभिव्यक्त करना अधिक उचित समझा।

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'दांताल हाथीर उने खोवा हौदा' में सारू गोसाइन के महीधर बाबू के प्रति दैहिक आकर्षण के अनुभव और पितृसत्तात्मक मानसिकता के कारण मन की दुविधा को चित्रित करती उपन्यास की कुछ पंक्तियाँ निम्नवत हैं-

एक मन कहता है, "क्या वह(सारू गोसाइन) भीतर प्रवेश करे? क्या वह(महीधर) उसके थोड़ा और निकट हो जाए?"[60] परंतु संस्कारों से बंधा मन स्वयं को धिक्कारता है, "यह तो बहुत बड़ा पाप होगा! यह तो मुझे नरक की अग्नि में धकेल देगा और पूरी तरह भस्म कर डालेगा। हे ईश्वर, क्षमा करो, क्षमा करो, मुझे। [61]

इस विषय में डॉ. शेखर चक्रबर्ती लिखते हैं कि सामाजिक मान्यताओं के विपरीत इस प्रकार के यौनिक और लैंगिक दमन को चित्रित कर इंदिरा गोस्वामी यह दिखाने का प्रयास करती हैं कि यौनिक और लैंगिक पहचान का निर्धारण पितृसत्तात्मक समाज द्वारा किया जाता है। "Presenting this kind of sexual and gender repression against social norms, Goswami tries to show that the gender and sexual identity are designed by the patriarchal society."[62]

पापोरी गोस्वामी ने इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में प्रेम और यौन संबंधों के चित्रण के विषय में लिखा है, "उपन्यास 'दाँताल हाथिर उने खोवा हौदा' की विधवा नायिका गिरिबाला कहती है, प्रेम ही यौन संबंध को उत्साहित और नियंत्रित करने वाला शस्त्र है। किसी भी प्रकार का नैतिक ज्ञान और संस्कार शरीर की इस संपत्ति को वश में नहीं कर सकता। छूकर देखो साहब, क्या विधवा होने से मेरी देह में कुछ भी नहीं रह गया है? इतनी बेबाकी से डॉ. गोस्वामी की नारी पात्र ही बोल सकती थी। उनके साहित्य को पढ़ कर ऐसा लगता है कि प्रेम और यौन संबंध हाथ पकड़ कर चलते हैं, इसीलिए उनके नारी चरित्र प्रेम और यौन इच्छाओं के पक्ष में इतने मुखर हैं। "[63]

4.5- आत्मबोध से जागृत विवेकशील स्त्रियाँ

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी ने अपने उपन्यासों द्वारा ऐसे स्त्री पात्रों का चित्रण किया है जिन्होंने आत्मबोध के माध्यम से अपने अस्तित्व की सही पहचान को समझा है।

मित्रो अपनी अस्मिता, इच्छाओं तथा अधिकारों के प्रति सचेत है। उपन्यास के अंत में पति को धोखे में रखकर डिप्टी से समागम के लिए जाती मित्रो को भविष्य के प्रति अस्मिता संकट नजर आता है। मित्रो इस वास्तविकता से रूबरू होती है कि यदि आज वह मात्र शारीरिक सुख के लिए पति को धोखा देती है तो माँ बालों की तरह वह भी ढलती उम्र में 'ठठरी ठंडी भट्ठी' ही रह जाएगी। रोहिणी अग्रवाल मित्रो को होने वाले दिशाबोध के विषय में लिखती हैं, "मित्रो घड़ी-दो घड़ी के सुख के लिए अपना समूचा भविष्य दांव पर नहीं लगा सकती। उसे अपनी सीमाओं का ज्ञान हो गया है। यही है उसका दिशाबोध जो उसके चरित्र को विश्वसनीयता और गंभीरता प्रदान करता है। "[64] हमेशा हंसी-ठिठोली करने वाली मित्रो, माँ बालो के जीवन का सूनापन देखकर ठिठक जाती है और वापस अपने पति सरदारीलाल के पास आ जाती है। "माँ का यह 'कनफेशन' और उसकी आँखों में दूर-दूर तक छितरा सूनापन मित्रो पर हावी 'संगरूर वाली लालीबाई' का दम तोड़ देता है। माँ का वर्तमान एक आईने के मानिंद उसके सामने टंग जाता है जिसमें उसे अपना सूना भविष्य 'मसान सा सूना भाय-भाय करता भूतों के डेरे' सा दिखता है तो अपनी छवि माँ जैसी 'भूखी-प्यासी डाकिन' सी। "[65] रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं कि, "खुले-सधे शब्दों में अपनी तृषा और तृष्णा, विकारों और विचारों को अभिव्यक्त करने वाली मित्रो यदि शरीर को ही परम लक्ष्य मानती तो वह बालो होती, समूचे हिंदी कथा-साहित्य पर शासन करने वाली कद्दावर मित्रो न होती। शारीरिक कामनाओं को पहचानते-बखानते अचानक मित्रो को बोध होता है कि अपने जिस दैहिक सौन्दर्य को इलाही ताकत मानकर वह परमात्मा को भी कामासक्त कर डालने की चुनौती देती है, वह देह अंतिम सत्य तो नहीं। वह क्षणभंगुर है, पानी के बुदबुदे सी। उसके बाद शेष है रीतापन। आलीशान इमारत के खंडहरों में बीती समृद्धि लौटाने की नाकाम कोशिश। इस सत्य को जानने के बाद मित्रो जीवन को महज खिलवाड़ नहीं समझ सकती। "[66] मित्रो द्वारा उठाए गए इस कदम के विषय में रणवीर राँगरा द्वारा एक साक्षात्कार में कृष्णा सोबती से पूछा गया था कि क्यों मित्रो को उपन्यास के अंत में वापस घर की चारदीवारी के भीतर भेज दिया जाता है? इस पर कृष्णा सोबती

ने बहुत सधा हुआ उत्तर देते हुए कहा, "मित्रो अपने बूते पर जिंदगी को घूरती है, मसखरी करती है, लड़ती है, टक्कर लेती है और सीनाजोरी भी करती है। ...एक फुँकारती घड़ी में अपनी माँ की संज्ञा को अलगनी पर टँगते देख कपड़ों और काया में फर्क करती हैऔर स्वयं ही अपने फरफराते कपड़ों को सहेज-समेट परले सिरे से अपने साथ आ लगती है- अपने को ढूँढ़ लेती है। "[67]

'दिलोदानिश' का कथानक दिल्ली की एक पुश्तैनी हवेली के इर्द-गिर्द बुना गया है जिसके तार उसी दिल्ली की तंग गलियों की एक रिहाईश फ़राशखाने से भी जुड़े हैं। इस पुश्तैनी हवेली के कर्ता-धर्ता वकील कृपानारायण सामंती मूल्यों और पितृसत्तात्मक संस्कृति के पोषक हैं। आचार-व्यवहार में दोहरा मानदंड रखने वाले कृपानारायण स्वयं दिलफेंक हैं परंतु अपनी पत्नी कुटुंबप्यारी और रखैल महकबानो से एकनिष्ठता की अपेक्षा रखते हैं। कृपानारायण का भरा-पूरा परिवार है फिर भी वह डेरेदारिन नसीमबनो का केस लड़ते हुए एक जिम्मेदारी की तरह सौंपी गई नसीम की बेटी महक को अपनी रखैल बना लेते हैं। महकबानो 'नवाबसाहिब की कातिल डेरेवाली नसीम की बेटी' होने की नियति से बंधी हुई है। तमाम उलाहनाएं, ताने सहते हुए महकबानो ने अपने बच्चों मासूमा और बदरू को अच्छे संस्कार सिखाए। महकबानो जब तक स्वयं की अस्मिता से अनभिज्ञ थी, उसकी यही इच्छा रही कि उसे भी सामाजिक मान्यताओं के भीतर ही एक परिवार मिले। वकील साहब से वह कहती है, "घर की चाहत के बारे में तो उन गरीबों से पूछिए जो ताउम्र सराय का दरवाजा पीटा करते हैं और कभी घर नहीं बना सकते। "[68] महकबानो अपनी अस्मिता के प्रति सचेत है परंतु सामाजिक मान्यताओं द्वारा उस पर 'रखैल' का लेबल चस्पाँ कर दिया गया है। वकील साहब की पत्नी कुटुंब से कई बार अपमानित होकर भी वह इसके खिलाफ अपनी आवाज बुलंद नहीं कर पाती। बेटा और बेटी को नियामत मानने वाली महकबानो का आत्मबोध तब जागृत होता है जब बेटी मासूमा के विवाह में शरीक होने का हक भी उससे छीन लिया जाता है। बेटा बदरू भी हर बात पर पिता की ही पैरवी करता है। महकबानो को समझ में आता है कि वह नितांत अकेली है। वकील साहब द्वारा कुटुंब का पक्ष लेते हुए देख वह अवाक रह जाती है।

"महक के दिल पर कंकर नहीं पत्थर जा लगा। पैरों तले सीलन और आँखों में गीली लकड़ियों का धुआँ। आजू-बाजू मासूमा और बदरू। और यह रहे हम। हम तो फकत एक धब्बा थे। इनके हाथों पुंछ गए!"[69] वकील साहिब महकबानो के सामने यह शर्त रखते हैं कि मासूमा के निकाह के बाद महक का उससे कोई रिश्ता नहीं रह जाएगा। महक अपना विरोध दर्ज करते हुए कहती है, "वकील साहब आप अपने बोझ दूसरों को सौंप देने के आदी हैं। अब हमारी ही उम्र की पोटली बांधकर दूर फेंकवाने की तैयारी में हैं। साहिब हमारे बच्चों को इस बेदरेगी से छीन लेने का भला क्या हक है आपको!"[70] महकबानो का बेटा बदरू पिता वकील साहब का ही पक्ष लेता है। वह नहीं चाहता कि उसकी अम्मी, अब्बू के खिलाफ जाकर वकील अनवर खान से मेलजोल रखें और मासूमा के निकाह के मौके पर जेवरों के सन्दूक की बात को उठाएं। परंतु महकबानो का आत्मबोध जागृत हो चुका है। वह सख्त आवाज में बदरू से कहती है, "बदरुद्दीन, तुम अभी नहीं समझोगे। हक मांगना अगर लड़ाई है तो दूसरों का हक मारना भी बेइंसाफी है। उठिए, खान साहब को बुला कर लाइए। "[71] महक द्वारा उठाए गए इस कदम के विषय में कृष्णा सोबती का कहना है, "महक के गहनों की सन्दूकची जिस कारण पारिवारिक निधि के बाहर थी उसी कारण एक बार फिर बाहर ही रहने को थी। लेकिन महक का वह कदम जो जिद की शक्ल में उभरा, कृपानारायण साहब की जन्मजात सत्ता पर प्रश्नचिह्न लगा गया। "[72]

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'ऐ लड़की' में अम्मू को जीवन के अंतिम समय में यह आत्मबोध होता है कि पूरे परिवार की छोटी-बड़ी इच्छाओं को पूरा करते-करते उनकी स्वयं की इच्छाएँ अधूरी ही रह गईं। पति-पत्नी के संबंध में पति की प्रभुता के आगे बेबस पड़ी पत्नी के संबंध में वे कहती हैं, "घर का यह खेल बराबरी का नहीं, ऊपर-नीचे का है। घर का स्वामी कमाई से परिवार के लिए सुविधाएं जुटाता है। साथ ही अपनी ताकत कमाता-बनाता है। इसी प्रभुताई के आगे गिरवी पड़ी रहती है बच्चों की माँ। "[73] इसलिए अपनी परिचारिका सूसन को वैवाहिक जीवन का मूलमंत्र देते

हुए वह कहती है, "सूसन, शादी के बाद किसी के हाथ का झुनझुना नहीं बनना। अपनी ताकत बनने की कोशिश करना। "[74]

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'थेंगफाखरीर तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' की नायिका थेंगफाखरी ब्रिटिश सरकार की विश्वासपात्र है। थेंगफाखरी के साहस और शौर्य को देखते हुए उसे तहसीलदार के पद पर नियुक्त किया जाता है। पद के दायित्व का निर्वहन करते हुए सरकारी करों के बोझ तले दबे गरीब किसानों को देख उसका मन द्रवित हो उठता है। थेंगफाखरी के प्रिय चाचा मुसहरी अंग्रेजों के विरुद्ध कार्य कर रहे क्रांतिकारी संगठनों से जुड़े हुए थे। गोलियों से छलनी चाचा के शव को आँगन में रखा देख वह अवाक हो उठती है। वह अपने चाचा के शव को घूरती रही जो गोलियों से बुरी तरह छलनी हो चुका था। उनके सर से अब भी खून बह रहा था। जिस मिट्टी पर उसके चाचा को इतना अभिमान था आज उसी में उनके खून की बूंदें मिली जा रही थीं। "She kept staring at her uncle's corpse, pierced with many bullets. His head was still bleeding. The drops of blood mixing with the soil, which her uncle was so proud of.[75] बिजनी राज्य में क्रांतिकारी गतिविधियों के विरुद्ध अंग्रेजों का दमनचक्र जारी था। क्रांतिकारियों द्वारा गोलपारा के सरकारी खजाने को लूट लिया गया था। थेंगफाखरी, मैकलिन्सन साहब से जानना चाह रही थी कि उसके चाचा पर गोली किसने चलाई? वह मैकलिन्सन साहब से पूछती है, मैं अपने चाचा की मृत्यु के शोक से उबर नहीं पा रही हूँ। वह गलती से गोली का शिकार हुए। क्या आप अपने जाने से पहले मुझे बता सकते हैं कि उन पर गोली किसने चलाई? "I haven't been able come out of the trauma of my uncle's death. He died of a stray bullet. Will you please tell me the name of the person who shot him dead—before you leave?[76] गरीब भोला कचारी के परिवार की दयनीय दशा देखकर थेंगफाखरी का मन करुणा से भर जाता है। थेंगफाखरी ने अंग्रेज सरकार द्वारा दी गई अस्सी बीघा जमीन भी उन गरीब किसानों में बाँट दी थी जो कर चुकाने के चक्कर में अपना सर्वस्व गंवा चुके

थे। थेंगफाखरी को जब क्रांतिकारियों के नेता युवराज रामचन्द्र को फांसी दिए जाने की सूचना मिलती है तब वह दृढ़ निश्चय कर लेती है कि अब वह अंग्रेजी सरकार के साथ काम नहीं करेगी। दादा त्रिभुवन बहादुर से आशीर्वाद लेते हुए वह कहती है कि अब आपको मुझे और नहीं रोकना चाहिए। जाकर देखती हूँ, कैसे वे युवराज को फांसी दे पाते हैं। उसके बाद मैं खरगोश्वर सूत्रधार के समूह से जुड़ जाऊँगी। वे नाव के साथ मेरा इंतजार कर रहे हैं। यह मेरी मातृभूमि है और मैं यहाँ जरूर वापस आऊँगी। "You must not stop me. Early in the morning, I will go to see how they are going to hang the Prince to death. After that, I will join the same group that Khorgeshwor Sutradhar is also a member of. They will be waiting for me with a boat. Don't try to look for me. This is my Motherland. I will come back to this land."[77] थेंगफाखरी जैसे विश्वासपात्र कर्मचारी के अंग्रेज सरकार से हुए मोहभंग को गहराई से समझने की आवश्यकता है। थेंगफाखरी के बदलाव और लौटाव की इस प्रक्रिया से यह स्पष्ट होता है कि क्रांति की ओर अग्रसर होना मात्र गर्म खून और क्रोध का परिचायक नहीं वरण यह एक सोचा-समझा और समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप लिया गया निर्णय था। थेंगफाखरी द्वारा क्रांति के मार्ग का वरण इस ओर भी इंगित करता है कि औपनिवेशिक शासनकाल का भारतीय असमी समाज अंग्रेजों से नहीं वरण उनकी दमनकारी नीतियों से घृणा करता था।

4.6 - स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान

'नारी स्वतंत्रता' पर कृष्णा सोबती का कहना है, " 'नारी-स्वतंत्रता' का अभिप्राय मेरे लिए यह है कि मैं अपने आत्म की, अपने व्यक्तित्व की मालिक हूँ और आर्थिक रूप से अपनी देखभाल के लिए किसी पर निर्भर नहीं हूँ। 'आजादी' यानी कोई और मेरी जिंदगी को प्रबंधित नहीं कर सकता। एक व्यक्ति के रूप में, मैं स्वयं को स्थित कर पाऊँ और अपने चयन तक बिना किसी समझौते के पहुँच सकूँ। "[78]

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'ऐ लड़की' में अम्मू की बेटी ने अपनी एक स्वतंत्र पहचान अर्जित की है। अम्मू अपनी बेटी से कहती है, "तुम किसी के अधीन नहीं। स्वाधीन हो। लड़की, यह ताकत है। सामर्थ्य। शक्ति। समझ रही हो न। "[79] अम्मू अपने अनुभव से यह जानने में समर्थ है कि भरे-पूरे परिवार में भी एक स्त्री संवेदनाओं के स्तर पर नितांत अकेली होती है। वह बेटी से कहती है, "सुनो, बेटा-बेटियाँ, नाती-नातिन, पुत्र-पौत्र-मेरा सब परिवार सजा हुआ है, फिर भी अकेली हूँ। और तुम! तुम उस प्राचीन गाथा के बाहर हो , जहां पति होता है, बच्चे होते हैं, परिवार होता है। न भी हो दुनियादारी वाली चौखट, तो भी तुम अपने आप में तो आप हो। लड़की, अपने आप में आप होना परम है, श्रेष्ठ है। "[80] अम्मू जब उससे पूछती है कि जरूरत पड़ने पर वह किसे आवाज देगी। उत्तर में माँ को आश्वस्त करते हुए बेटी कहती है, "मैं किसी को नहीं पुकारती। जो मुझे आवाज देगा मैं उसे जवाब दूँगी। अम्मू अब तो तसल्ली है?"[81]

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' की नायिका अरण्या ने स्त्रियों की परंपरागत छवि के घेरे से बाहर निकल कर अपनी स्वयं की पहचान अर्जित की है। अरण्या ने अपना जीवन अपनी शर्तों पर जिया है, इसलिए अपने अतीत से वह संतुष्ट तथा भविष्य के प्रति आशावान है। क्षण-क्षण वृद्धावस्था को बढ़ती अरण्या अपने झुर्रियों वाले चेहरे के विषय में सोचती है, "इस चेहरे पर सताई हुई रेखाएं नहीं। समय के साथ उगी पकी हैं, अपने वक्त को खुद जिया है। "[82] अरण्या स्त्रियों के स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान के प्रति सचेत और सजग है। नन्ही गुलाब की कली को गुलाब-पुत्रिका कहने वाली अरण्या ईशान के यह पूछे जाने पर, "गुलाब-पुत्रिका, इस पहचान में कहीं स्त्रीत्व का दबाव तो नहीं। "[83] दृढ़ता से उत्तर देती है, "हो भी सकता है। पार्क का पुत्र-समाज तो बहुसंख्यक है। हमें अल्पसंख्यकों की भी चिंता है इसीलिए इन पुत्रियों को पहचानना भी जरूरी है। "[84] वृद्धावस्था की ओर बढ़ती स्त्रियों से प्रायः यह अपेक्षा रखी जाती है कि वे अपना शेष जीवन ईश्वर के भजन कर्म में लगाएं। उपन्यास की एक अन्य पात्र दमयन्ती ने यह मान लिया है कि वृद्धावस्था में अपना ध्यान गुरु के सत्संग में ही लगाना चाहिए। बेटे-बहुओं के व्यवहार से क्षुब्ध

दमयन्ती आर्थिक रूप से मजबूत होने के बावजूद आत्मविश्वास की कमी से स्वयं को अशक्त और असहाय महसूस करने लगी है। इहलोक में रहते हुए वह परलोक की चिंताओं से भयाक्रांत है। अरण्या परलोक के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखती। इहलोक के कर्तव्यों के प्रति वह पूरी तरह सजग और निष्ठावान है। परिवार के भीतर स्त्री का स्वयं का अस्तित्व मिट जाता है, इस तथ्य से अरण्या भली-भांति परिचित है। स्वयं को मात्र किसी पारिवारिक रिश्ते के नाम से पहचाने जाने की वह समर्थक नहीं है। वह ईशान से कहती है, "मैं अपने को उम्र में इतना बड़ा महसूस नहीं करती जितना आप मान रहे हैं। मेरे आसपास मेरा परिवार नहीं फैला हुआ कि मैं अपने में माँ, नानी, दादी की बूढ़ी छवि ही देखने लगूँ। ईशान, मुझे मेरा अपनापन निरंतरता का एहसास देता है। "[85] अरण्या ने अपने जीवन के निर्णय स्वयं लिए हैं। जीवन के प्रति आशावादी नजरिया रखने वाली अरण्या उम्र के इस मोड़ पर जीवन के प्राप्य-अप्राप्य से पूरी तरह संतुष्ट है। आत्ममंथन के क्षण में वह स्वयं से कहती है, "अरण्या, तुमने जो भी पाया-खोया वह इतना विषादी तो नहीं रहा। बेमौसम कुछ-कुछ चमकता रहा, आलोकित करता रहा तुम्हारे गहरे अँधियारे को!"[86] जीवन अपनी तर्ज पर जीने से मन में पश्चाताप की गुंजाइश नहीं रह जाती। इसलिए अरण्या का मानना है, "जो भी है मैं अपने अंदर एक गहरी तृप्ति महसूस करती हूँ जो किन्हीं भी संबंधों और मित्रताओं से अलग है। "[87] अरण्या के पास अकेलेपन की भी एक अलग और तर्कसंगत व्याख्या है, "अकेले होने पर आप अपने से दूर नहीं होते। अपने में खोजते हैं उन संभावनाओं को जो मूल्यवान हैं। आप अपने नजदीक होते जाते हैं। "[88]

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' की सोबती बाई अपनी नई नौकरी के प्रति एक कश्मकश होते हुए भी उत्साहित हैं। दिल्ली से नौकरी के लिए राजस्थान के सिरोही राज्य में आई सोबतीबाई को शरणार्थी के रूप में देखा जा रहा है। यह भांप लेने पर कि जुतशी साहब जैसे लोग एक शरणार्थी को सिरोही में टिकने नहीं देंगे तो उन्हें याद आता है कि कैसे विभाजन के दौरान दोनों ओर के शरणार्थियों को सरकार की तरफ से मात्र आश्वासन दिए जा रहे

थे। पर सरकार से सिर्फ वायदे मिले तो शरणार्थियों ने खुद ही छोड़े गए घरों पर जाकर अपना कब्जा जमा लिया। सोबती बाई भी दृढ़ हो गईं कि अपने अधिकार की लड़ाई स्वयं ही लड़नी होगी और वह शिशुशाला के लिए अपनी जॉइनिंग रिपोर्ट दे आती हैं। राजनीतिक कारणों से शिशुशाला नहीं खुल पाती और सोबतीबाई को सिरोही रियासत के नाबालिग महाराज तेज सिंह की गवर्नेस के रूप में नियुक्त कर दिया जाता है। यहाँ सोबती बाई बिना किसी दबाव के अपने दायित्व का निर्वहन करती हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

-तेजसिंह इधर आइए। मेरे पास आइए- आप दरवाजे पर खड़े होंगे और मुझसे पूछेंगे, क्या मैं अंदर आ सकता हूँ। मैं कहूँगी-हाँ आप अंदर या सकते हैं-तो आप अंदर प्रवेश करेंगे।

बड़ी माँ ने घूरकर पूछा-यह क्या करने जा रही हैं? महाराज माँगेंगे आपसे आज्ञा कि अंदर आ जाऊँ?

-नहीं-नहीं, बाई हमारी बात सुनो।

-इस तरह की दखल अंदाजी न करें!

तेज सिंह कुछ उत्साहित हुए-

-मैम, मे आई कम इन प्लीज-

-यस तेज सिंह, डू कम इन! पिक अप योर बैग एण्ड टेक योर सीट। "[89]

तेज सिंह की गवर्नेस होने के नाते वह तेज सिंह की शिक्षा में किसी भी प्रकार के राजनैतिक और शाही हस्तक्षेप का विरोध करती हैं जिससे कुँवर तेज सिंह को हुक्मशाही के अतीत से निकाल कर वर्तमान की समान शिक्षा प्रणाली के विषय में समझा सकें। अपने आत्मविश्वास और दृढ़ व्यक्तित्व के कारण ही सोबतीबाई स्वयं को सियासती दांव-पेंचों और रियासती गुलामी से मुक्त रख पाती हैं।

कृष्णा सोबती का अंतिम उपन्यास 'चन्ना' स्वतंत्रता पूर्व भारत की खेतिहर संस्कृति और शहरी संस्कृति को जोड़ती हुई एक कड़ी के समान है। उपन्यास की नायिका चन्ना अपने अधिकारों के

विषय में सचेत आधुनिक युवती है। पिता की मृत्यु के बाद वह सौतेली माँ श्यामा के पिता की वस्तुओं से जुड़े लगाव को समझते हुए जगदीश मामू को पिता की पसंदीदा कार नहीं बेचने देती है। पिता के कारोबार में मुनीम जी के योगदान को चन्ना भूली नहीं है इसलिए वह इस बात से सहमत नहीं कि पिता जी के न रहने पर मुनीम जी को निकाल दिया जाए। माँ और जगदीश मामू से चन्ना अनुरोध और आज्ञा के मिले हुए स्वर में कहती है, "माँ, कारखाना चल रहा है, ब्रांचें चल रही हैं, दफ्तर वैसे ही हैं, फिर मुनीम जी का काम तो कम नहीं हुआ। ... मामू मुनीम जी को रहने दो। जो काम उनका है, उन्हें करने दो। "[90] चन्ना शाह जी की धियानी होने के नाते दूर-दूर तक फैली हुई अपनी जमीन, खेत-खलिहान और उनसे होने वाली उपज से पूरी तरह वाकिफ है। बेलेवाली जमीन को बरकत अली ठेके पर जोतता है। जमींदारी पर लगे प्रतिबंधों वाले बिल के पास होने की आड़ में उसकी मंशा इस जमीन को हड़प लेने की है। चन्ना शाह जी की तरफ से खुद निर्णय लेते हुए बेलेवाली जमीन बरकत अली को दोबारा ठेके पर नहीं देती है। भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक मानसिकता का परिणाम है कि चन्ना के उन्मुक्त आचरण को उसके चरित्र के छिछलेपन का परिचायक समझा जाता है। किसी लड़की का बाहर पढ़ना, बॉयज हॉस्टल में सभी से निःसंकोच मित्रवत मिलना या फिर कहीं घूमने जाने के लिए खुद पहल करना, ये कुछ ऐसी बातें हैं जिनकी अपेक्षा हमारा समाज एक लड़की से नहीं करता है परंतु अपने व्यवहार से चन्ना इन बंधे-बँधाएं ढांचों को तोड़ती है। चन्ना से अपेक्षा यही रहती है कि वह कमल से विवाह के पश्चात मुंबई ही रहे। परंतु चन्ना अपने निर्णयों पर दृढ़ रहते हुए पढ़ाई के बाद गाँव जाने का निर्णय लेती है। भागे द्वारा बेची गई पत्तनवाली जमीन को रुलदू से पूरी सूझबूझ के साथ छुड़वाती है। उपन्यास के अंत में चन्ना का वापस गाँव जाने का निर्णय स्त्री की बंधी-बंधाई छवि को तोड़ता है। यह निर्णय उन सीमाओं का अतिक्रमण करता है, जिनके भीतर ही हमारा समाज एक स्त्री को देखना चाहता है।

इंदिरा गोस्वामी का अंतिम उपन्यास 'थेंगफाखरी तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' पूर्वोत्तर भारत के बोडो समुदाय की स्त्री, थेंगफाखरी की शौर्यगाथा है जिन्होनें उन्नीसवीं सदी के कोलोनियल असम की स्त्री शक्ति का नेतृत्व किया। इंदिरा गोस्वामी ने थेंगफाखरी के किरदार को लोककथाओं और लोकगीतों से निकाल कर पुनर्जीवित किया। थेंगफाखरी को भारत की पहली महिला तहसीलदार माना जाता है। थेंगफाखरी जैसी विस्मृत नायिका का परिचय पाठकों से कराना इंदिरा गोस्वामी की साहित्यिक प्रतिबद्धता की ओर इंगित करता है। उपन्यास में थेंगफाखरी का चित्रण ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर किया गया है। थेंगफाखरी ने ब्रिटिश सरकार की कई ऐसे गांवों से कर वसूलने में सहायता की थी जहां कर वसूलना लगभग असंभव था। थेंगफाखरी के गुरु कप्तान मैकलिन्सन जानते थे कि थेंगफाखरी को सम्पूर्ण बोडो समुदाय में बेहद सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उनका कहना था कि जब भी किसी करदाता के आँगन में थेंगफाखरी खड़ी होती है तो वहाँ इतना सन्नाटा रहता है कि सुई का गिरना भी पता चल जाए। क्या मजाल है कि किसी के मुंह से एक शब्द भी निकले। "When you stand in the courtyard of a tax payer's home, there is pin drop silence. No one utters a word. Not a single word!"[91] थेंगफाखरी को जब ब्रिटिश सरकार ने इज़ारदार के पद पर नियुक्त किया तब कुछ ग्रामवासियों द्वारा थेंगफाखरी की योग्यता पर संदेह किए जाने पर कप्तान हार्डी कहते हैं कि थेंगफाखरी एक खूंखार शेर को मार चुकी है। तुम में से किसी ने कभी कुछ ऐसा किया है? किसी शेर को देखते ही सब के सब भाग के कंपनी के अहाते में आ जाते हो और अफसरों से मदद की गुहार लगाते हो। यही करते हो ना? "She has killed a man-eater. Could any among you have done that? When you see a tiger all of you run to the company's premises and ask the officers for kelp, don't you?"[92] ऐसे समय में जब विधवाओं को पति की चिता के साथ ही सती कर दिया जाता था, तब बाल विधवा थेंगफाखरी का ब्रिटिश सरकार के साथ कंधे से कंधा मिला कर चलना स्त्री सशक्तिकरण की अप्रतिम मिसाल बनता है। घुड़सवारी तथा तलवारबाजी में निपुण थेंगफाखरी

असम की महारानी भाग्येश्वरी देवी की भी प्रिय है। वे मैकलिन्सन साहब से कहती हैं कि थेंगफाखरी ने इस राज्य का मान बढ़ाया है। उसकी चर्चा आज दूर तक है। जिन स्थानों पर कर वसूलना मुश्किल था वहाँ भी थेंगफाखरी की मदद से यह संभव हो पा रहा है। "Thengphakhri has enhanced the glory of our land. Today, her story has reached distant lands. She made it easy for you to collect taxes from all those places where you were unable to go"[93] थेंगफाखरी को आशीर्वाद देते हुए महारानी कहती हैं कि हमारे इस विशाल साम्राज्य में कभी किसी स्त्री को कंपनी के साथ काम करने का मौका नहीं मिला। तुमसे पहले कभी किसी की तहसीलदार के रूप में पद्दोनिति नहीं हुई । "In this huge region of ours, no woman was allowed to collect taxes. No one was promoted to the post of a Tehsildar before."[94]

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठो' मुख्यतः राजधानी दिल्ली में हुए सिख दंगों की विभीषिका पर आधारित है परंतु उपन्यास की अध्यापिका के माध्यम से एक स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और आत्मविश्वास से लबरेज स्त्री का चित्रण किया गया है। यह भी सत्य है कि उपन्यास में इंदिरा गोस्वामी ने अध्यापिका को किसी नाम से नहीं पुकारा है वह जिस प्रकार से दंगा प्रभावित क्षेत्रों में जाकर असहाय, बेघर लोगों की सहायता करती है उससे उसके निर्भीक और साहसी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। वह दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापिका होने के साथ ही लेखिका भी है जो महत्वपूर्ण तथ्यों के संकलन के लिए हमेशा अपने पास एक नोटबुक रखती है। इसके लिए वह आसपास के चरित्रों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन भी करती है। लेखिका के अनुसार अपनी इस आदत के फलस्वरूप कभी-कभी वह दुविधाजनक स्थिति में भी पड़ जाती थीं। लेखिका सोचती है कि आसपास के पुरुषों का गंभीरता से निरीक्षण करना ताकि उपन्यासों में उनका चित्रण सही तरीके से कर पाऊँ, मुझे अजीब परिस्थितियों में डाल देता है। "I know that the deep impossible urge inside me to study men so that I can portray them correctly

in my novels can lend me in awkward situations."[95] ऑटो रिक्शा चालक संतोष सिंह जब उन्हें कुदूसिया बाग घुमाने का निवेदन करता है तब वे समझ जाती हैं कि वह भी इसी गलतफहमी का शिकार है। उपन्यास की नायिका तथ्य संग्रहण के लिए दिल्ली के रेड लाइट क्षेत्रों में भी जाती है। लेखिका की नोटबुक में 13 जुलाई 1984, शुक्रवार का दिन दिल्ली की जी. बी. रोड के रेड लाइट एरिया में काम करने वाली वेश्याओं के जीवन की अनसुनी कहानियों से भरा हुआ है। [96] पंजाब में उठे 'खालिस्तान आंदोलन' के कारण राजधानी दिल्ली में भी सिखों को शक की नजर से देखा जा रहा था। सिखों को बस से उतार कर तलाशी लेना, उनकी गतिविधियों पर नजर रखना आम बात हो गई थी। बलबीर सिंह रद्दीवाला अपनी मेहनत की कमाई को सुरक्षा की दृष्टि से लेखिका को सौंप देता है। लेखिका इस तथ्य से भलीभांति परिचित है कि सिख दंगों के समय किसी सिख की मदद करना खतरे से खाली नहीं है फिर भी वह बलबीर सिंह के लापता होने पर दंगाग्रस्त क्षेत्रों में जाकर बलबीर सिंह के परिवार को ढूँढती है।

निष्कर्ष:

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी दोनों साहित्यकारों के उपन्यासों में स्त्री पात्र हाशिए से केंद्र में आने के लिए सतत संघर्षशील दिखाई पड़ते हैं।

छुन्ना बीबी, मित्रो, सौदामिनी, गिरिबाला, डोरोथी तथा विधिबाला द्वारा वर्षों से चली आ रही स्त्री द्वेषी धार्मिक कुरीतियों तथा रूढ़िवादी परंपराओं का पुरजोर विरोध दर्ज किया गया है। छुन्ना बीबी, सौदामिनी तथा गिरिबाला वैधव्य के नाम पर स्त्रियों से अछूत व्यवहार करने वाली धार्मिक कुरीतियों पर प्रश्नचिह्न खड़ा करती हैं। छुन्ना बीबी जहां इन कुरीतियों से संघर्ष करते हुए अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाने में सफल हो पाती हैं वहीं सौदामिनी तथा गिरिबाला के कठिन संघर्ष की परिणिति क्रमशः आत्महत्या तथा आत्मदाह में होती है। कृष्णा सोबती द्वारा एक सामंती सामाजिक तथा पारिवारिक व्यवस्था में छुन्ना बीबी के माध्यम से विधवा पुनर्विवाह को दर्शाना तथा उसे

सम्मानजनक जीवन जीते दिखाना एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी कदम था। इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में चित्रित विधवा स्त्री पात्रों सौदामिनी तथा गिरिबाला के समक्ष प्राणों के उत्सर्ग के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा था इसका कारण उनका परिवेश और परिस्थिति भी है। गिरिबाला असम के प्रतिष्ठित वैष्णव सत्र के सत्राधिकार की पुत्री है जिसके घर की औरतों ने घर की चौखट के बाहर कभी पाँव ही नहीं रखे। सौदामिनी को ब्रजधाम ले आया जाता है जहां उसके पास दो ही विकल्प हैं- या तो वह परिस्थितियों से समझौता कर, राधेश्यामी बन दुख, दरिद्रता और अपमान से भरा जीवन जिए या फिर स्वयं को यमुना में आए तूफान के हवाले कर दे और वह दूसरा रास्ता चुनती है। यहाँ इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'नीलकंठी ब्रज' में एक विरोधाभास की स्थिति है। इंदिरा गोस्वामी सौदामिनी को स्वतंत्र नहीं कर पातीं परंतु वह वास्तविक जीवन में स्वयं विधवा होते हुए तमाम संघर्षों के बीच अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाने में सफल हो पाती हैं। अपनी आत्मकथा में उन्होंने इस तथ्य का जिक्र किया है कि कहीं न कहीं उनकी और सौदामिनी की मनःस्थिति एक सी ही थी। वह वास्तविक जीवन में उस आत्मघाती मनःस्थिति से उबर पाईं परंतु सौदामिनी यह करने में असफल रही। इंदिरा गोस्वामी के अंतिम उपन्यास 'थेंगफाखरीर तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' में बाल विधवा थेंगफाखरी को सम्मानजनक जीवन जीते हुए चित्रित किया गया है। इसका कारण भी परिवेश से जुड़ा हुआ है। थेंगफाखरी पूर्वोत्तर भारत के बोडो समुदाय से आती हैं। बोडो समुदाय में सती प्रथा नहीं मानी जाती अतः वहाँ विधवाओं के स्थिति भारत के अन्य राज्यों से बेहतर है। मेरिना इस्लाम अपने आलेख 'वुमन इन बोडो सोसाइटी' में लिखती हैं, "In the last past of 19th century the Bodo society is said to have intermixed with mainstream Hindu society was under the sway of many social evil such as child marriage, dowry system, sati system, purdah system etc. Surprisingly these obnoxious social customs are not practiced in Bodo society."[97]

कृष्णा सोबती और इंदिरा गोस्वामी के पात्र मित्रो, डोरोथी विधिबाला रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध करते हैं। कृष्णा सोबती की मित्रो का यह संघर्ष पारिवारिक सीमा के भीतर है जबकि इंदिरा गोस्वामी के स्त्री पात्रों डोरोथी तथा विधिबाला ने सामाजिक स्तर पर इन रूढ़िवादी परंपराओं के खिलाफ आवाज उठाई है। डोरोथी तथा विधिबाला बलिप्रथा का विरोध दर्ज करके समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास करती हैं। कृष्णा सोबती ने नारी की सामाजिक समस्याओं पर ज्यादा कुछ विस्तार से नहीं लिखा है इस संबंध में रोहिणी अग्रवाल का कहना है, "नारी की व्यक्तिगत समस्याओं को लेकर वे इतनी उलझी रहीं कि समाज के संदर्भ में उसकी समस्याओं और संघर्षों को उकेरने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिला। "[98]

'सूरजमुखी अँधेरे के' की रतिका, 'अहिरण' की निर्मला तथा 'छिन्नमस्ता' की डोरोथी ने बलात्कार से जुड़े मिथों का खंडन किया है। बलात्कार की शिकार महिलाओं को जीवन पर्यंत अवसाद और अपराधबोध से ग्रस्त न रह कर आत्मसम्मान के साथ जीना चाहिए।

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी दोनों ने ही अपने उपन्यासों की नायिकाओं के माध्यम से स्त्रियों की सहज यौनिक अभिव्यक्ति का चित्रण किया है। समित्रावन्ती, महकबानो, सौदामिनी, गिरिबाला और सारू गोसाइन इत्यादि पात्र अपनी यौनिक अभिव्यक्ति के लिए सजग तथा मुखर हैं। ये पात्र स्त्रियों के लिए इस टैबू को तोड़ते हैं कि यौनिक आकांक्षाएं और अभिव्यक्ति मात्र पुरुषत्व के दायरे में ही सीमित हैं। कृष्णा सोबती मित्रो और महकबानो के माध्यम से ऐसी स्त्रियों का चित्रण करती हैं जो अपनी दैहिक इच्छाओं को अपने भीतर ही नहीं रखना चाहती। इंदिरा गोस्वामी के यहाँ सौदामिनी, गिरिबाला इत्यादि प्रतिष्ठित परिवारों की महिलाएं हैं परंतु वह यौनिक अभिव्यक्ति की संकुचित सीमाओं का अतिक्रमण करती हैं।

महकबानो, अम्मू तथा थेंगफाखरी आत्मबोध के माध्यम से अपनी दुविधाओं की बेड़ियों को काटने में समर्थ हो पाती हैं। महकबानो वकील कृपानारायण के प्रति अपने प्रेम की सीमाओं को

समझ पाती है और उनसे जेवरों की सन्दूकची वापस लेकर तथा बेटी के विवाह में शरीक होकर अपने अस्तित्व को एक सार्थक पहचान दिलाने में सक्षम हो पाती है। अम्मू आत्मबोध के माध्यम से यह समझ पाती है कि स्त्री को मात्र पारिवारिक जिम्मेदारियों में स्वयं को स्वाहा न कर स्वयं की व्यक्तिगत पहचान अर्जित करने का प्रयास करना चाहिए। थेंगफाखरी, आत्मबोध के माध्यम से औपनिवेशिक शासन के दुष्चक्र और कुनीतियों को समझने में सफल होती है।

कृष्णा सोबती और इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में स्त्री पात्रों का संघर्ष उपन्यास दर उपन्यास चलता है और अपनी स्वतंत्र पहचान बनाता नजर आता है। कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी के शुरुआती उपन्यासों के स्त्री पात्र क्रमशः मित्रो, महकबानो, सौदामिनी तथा गिरिबाला इत्यादि जहां संघर्षशील चित्रित किए गए हैं वहीं अरण्या, सोबतीबाई, 'तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठो' की अध्यापिका तथा थेंगफाखरी अपने अस्तित्व की स्वतंत्र पहचान अर्जित कर चुके पात्र हैं। संघर्ष की दृष्टि से जहां दोनों उपन्यासकारों के स्त्री पात्रों में साम्य दिखाई पड़ता है वहीं संघर्ष के तरीके और व्यक्तित्व की दृष्टि से दोनों साहित्यकारों के स्त्री पात्रों में अंतर दिखाई पड़ता है। कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र मित्रो, महकबानो जहां हंसमुख और जिंदादिल हैं वहीं सौदामिनी, गिरिबाला तथा सारू गोसाइन गंभीर चित्रित किए गए हैं। मित्रो, महकबानों अपने विरोध में मुखर हैं वहीं सौदामिनी तथा गिरिबाला के विरोध का आधार साइलेंट ट्रीटमेंट है। सौदामिनी द्वारा आत्महत्या तथा गिरिबाला द्वारा आत्मदाह कायरता का प्रतीक होने के बजाय खोखली होती मान्यताओं के समक्ष आत्मसमर्पण न करने की दृढ़ता है।

अरण्या, अम्मू की बेटी, चन्ना, सोबती बाई, दिल्ली विश्वविद्यालय की अध्यापिका तथा थेंगफाखरी ऐसे स्त्रीपात्र हैं जो इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाने में सफल हुए हैं और यह संदेश देते हैं कि स्त्रियाँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन अकेले रहते हुए भी अच्छा और सम्मानजनक जीवन जी सकती हैं। थेंगफाखरी क्रांतिकारियों के दल में शामिल होकर पूर्वोत्तर भारत की स्त्री शक्ति का नेतृत्व करती है। स्त्री की परिपूर्णता, स्वायत्तता, सबलता, समर्थता,

आत्मनिर्भरता तथा स्वतंत्र व्यक्तित्व की दृष्टि से दोनों ही रचनाकार अपने लेखन के अंतिम चरण में चन्ना और थेंगफाखरी जैसे स्त्री पात्रों का निर्माण करते हैं।

संदर्भ सूची-

[1] खेतान, प्रभा (2014), उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 69

[2] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 33

[3] सोबती, कृष्णा (2016), मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 33

[4] सिंह, कुमार, राकेश (संपादक), सबद निरंतर, वर्ष-1, अंक-1, (जनवरी-मार्च 2021), पृष्ठ-150

[5] वही, पृष्ठ-60

[6] सोबती, कृष्णा (2018), दिलोदानिश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 143

[7] वही, पृष्ठ- 103

[8] वही, पृष्ठ - 111

[9] वही, पृष्ठ - 111

[10] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-160

[11] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ-31

[12] वही, पृष्ठ-112

[13] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ-148

[14] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ-153

[15] वही, पृष्ठ-229

[16] शाइनो बेबी पॉल का आलेख, Indira Goswami's Giribala-The true door to Swaraj, https://gandhifoundation.files.wordpress.com/2016/12/gw-129.pdf , पृष्ठ- 17

[17] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ- 63

[18] मांडलिक, डॉ. चंद्रकांत आर. (2017), "Three Widows in Indira Goswami's Novel- The Moth-Eaten Howdah of The Tusker", द कॉनटेक्स्ट, वॉल- 4, पृष्ठ- 4

[19] गोस्वामी, इंदिरा (2013), छिन्नमस्ता (हिंदी अनुवाद- पापोरी गोस्वामी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 101

[20] वही, पृष्ठ- 110

[21] वही, पृष्ठ- 111

[22] गोस्वामी, इंदिरा (2010), नीलकंठी ब्रज (हिंदी अनुवाद- दिनेश द्विवेदी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 45

[23] वही, पृष्ठ- 118

[24] कुमार, राधा (2019), स्त्री संघर्ष का इतिहास, अनुवाद: रमाशंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 260

[25] सोबती, कृष्णा (2018), लेखक का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 23

[26] सोबती, कृष्णा (2018), सूरजमुखी अँधेरे के, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 10

[27] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 34

[28] सोबती, कृष्णा (2018), सूरजमुखी अँधेरे के, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 97

[29] वही, पृष्ठ- 107

[30] वही, पृष्ठ- 141

[31] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-114

[32] गोस्वामी, इंदिरा (2015), अहिरण (हिंदी अनुवाद- बुद्धदेव चटर्जी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली पृष्ठ- 45

[33] वही, पृष्ठ- 47

[34] वही, पृष्ठ- 90

[35] गोस्वामी, इंदिरा (2013), छिन्नमस्ता (हिंदी अनुवाद- पापोरी गोस्वामी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 76

[36] वही, पृष्ठ- 82

[37] वही, पृष्ठ- 83

[38] सोबती, कृष्णा (2016), मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 30

[39] वही, पृष्ठ- 49

[40] सोबती, कृष्णा (2014), तिन पहाड़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 76

[41] सोबती, कृष्णा (2016), ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 17

[42] वही, पृष्ठ- 35

[43] वही, पृष्ठ- 74

[44] सतारावाला, कैकोस, बुरजोर (संकलन) (2002), द सर्च फॉर द सी: द फिक्शनल वर्ल्ड ऑफ इंदिरा गोस्वामी, बी. आर. प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 711

[45] वही, पृष्ठ- 715

[46] गोस्वामी, इंदिरा (2013), छिन्नमस्ता (हिंदी अनुवाद- पापोरी गोस्वामी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 65

[47] वही, पृष्ठ- 65

[48] वही, पृष्ठ- 74

[49] ग्रीयर, जर्मेन (2005), बधिया स्त्री, हिंदी अनुवाद: मधु बी. जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका

[50] सोबती, कृष्णा (2016), मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 20

[51] वही, पृष्ठ- 21

[52] जैन, निर्मला (2015), कथा और समय का सच, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 173

[53] सोबती, कृष्णा (2018), लेखक का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 122

[54] यादव, राजेन्द्र (2021), आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 129

[55] सिंह, कुमार, राकेश (संपादक), सबद निरंतर, वर्ष-1, अंक-1, (जनवरी-मार्च 2021), पृष्ठ- 62

[56] सोबती, कृष्णा (2018), दिलोदानिश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 18

[57] सतारावाला, कैकोस, बुरजोर (संकलन) (2002), द सर्च फॉर द सी: द फिक्शनल वर्ल्ड ऑफ इंदिरा गोस्वामी, बी. आर. प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 55

[58] गोस्वामी, इंदिरा (2010), नीलकंठी ब्रज (हिंदी अनुवाद- दिनेश द्विवेदी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 49

[59] वही, पृष्ठ- 66

[60] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ- 84

[61] वही

[62] डॉ. शेखर चक्रबर्ती का आलेख, Widowhood: A Social Harassment Reflected In Indira Goswami's Datal Hatir Uye Khua Howda, Indian Scholar, Vol.2 Issue I, September, 2015

[63] पापोरी गोस्वामी का आलेख, https://navbharattimes.indiatimes.com/opinion/articleshow/11109418.cms

[64] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 107

[65] वही, पृष्ठ- 106

[66] वही, पृष्ठ- 33

[67] सोबती, कृष्णा (2018), लेखक का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 20

[68] सोबती, कृष्णा (2018), दिलोदानिश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 16

[69] वही, पृष्ठ-186

[70] वही, पृष्ठ- 202

[71] वही, पृष्ठ- 207

[72] सोबती, कृष्णा (2018), लेखक का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 26

[73] सोबती, कृष्णा (2016), ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 55

[74] वही, पृष्ठ- 53

[75] गोस्वामी, इंदिरा (2012), द ब्रोन्ज सोर्ड ऑफ थेंगफाखरी तहसीलदार, अंग्रेजी अनुवाद: अरुणि कश्यप, जुबान प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 49

[76] वही, पृष्ठ-63

[77] वही, पृष्ठ-122

[78] सोबती, कृष्णा (2018), लेखक का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 126

[79] सोबती, कृष्णा (2016), ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 50

[80] वही, पृष्ठ- 57

[81] वही,

[82] सोबती, कृष्णा (2008), समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 8

[83] वही, पृष्ठ- 14

[84] वही, पृष्ठ- 14

[85] वही, पृष्ठ- 80

[86] वही, पृष्ठ- 30

[87] वही, पृष्ठ- 48

[88] वही, पृष्ठ- 82

[89] सोबती कृष्णा, गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं.- 183

[90] सोबती, कृष्णा (2019), चन्ना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 248

[91] गोस्वामी, इंदिरा (2012), द ब्रोन्ज सोर्ड ऑफ थेंगफाखरी तहसीलदार, अंग्रेजी अनुवाद: अरुणि कश्यप, जुबान प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-3

[92] वही, पृष्ठ- 17

[93] वही, पृष्ठ-102

[94] वही, पृष्ठ-104

[95] गोस्वामी इंदिरा, तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठो, अंग्रेजी अनुवाद(Pages stained with blood): प्रदीप आचार्य, कथा प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं.- 16,

[96] गोस्वामी, इंदिरा (2002), पेजेज स्टेंड विद ब्लड, अंग्रेजी अनुवाद: प्रदीप आचार्य, कथा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 115

[97] इस्लाम, मेरिना (2012), वुमन इन बोडो सोसाइटी, फ्रनटियर, वॉल- 44, नंबर-28, जुलाई

[98] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-39